अधूरी उल्टी आत्मकथा

यह कहानी है!

संघर्ष की...

समर्पण की...

साहस की...

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अधूरी उल्टी आत्मकथा

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी., डीलिट्

इस संस्करण के प्रकाशन व्यवस्था का सम्पूर्ण व्यय

श्रीमान संजय–रेखा दीवान, श्री तीर्थेश–प्रियंका दीवान

कु. मोक्षा दीवान एवं समस्त जैन दीवान परिवार, सूरत

द्वारा उठाया जा रहा है, एतदर्थ उन्हें धन्यवाद!

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–4, बापूनगर, जयपुर–302 015

फोन : 0141–2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

अधूरी उल्टी आत्मकथा »   डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ
25 मई, 2025
(संकल्प-दिवस के अवसर पर...)

मूल्य : 20 रुपये मात्र

विषय-सूची

अध्याय	नाम	पृष्ठ
अपनी बात	अपनी बात	03
पहला अध्याय	मुक्ति का मार्ग साथ का मार्ग नहीं है	05
दूसरा अध्याय	क्या भगवान करुणानिधि हैं?	13
तीसरा अध्याय	पूजन-विधान का तत्त्वप्रचार में योगदान	21
चौथा अध्याय	निश्चय-व्यवहार	33
पाँचवाँ अध्याय	धर्म के दशलक्षण	43
छठवाँ अध्याय	क्रमबद्धपर्याय	55
साँतवाँ अध्याय	आत्मधर्म (पत्रिका)	69
आठवाँ अध्याय	वीतराग-विज्ञान (पत्रिका)	77
नौवाँ अध्याय	छात्रावास एवं पाठशालाएँ	85
दसवाँ अध्याय	प्रशिक्षण शिविर	89
ग्यारहवाँ अध्याय	महाविद्यालय	95
बारहवाँ अध्याय	जिनवाणी सुरक्षा एवं समाज एकता आन्दोलन	103
तेरहवाँ अध्याय	दिगम्बर जैन महासमिति और आचार्य कुंदकुंद वर्ष	117
चौदहवाँ अध्याय	पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की रीति-नीति	127
पन्द्रहवाँ अध्याय	एक ही रास्ता	131
सोलहवाँ अध्याय	जरा मुड़कर देखें	141
सत्रहवाँ अध्याय	एक विहंगावलोकन	147
अठारहवाँ अध्याय	विदेशों में जैनधर्म	157
उन्नीसवाँ अध्याय	वर्णीजी का समागम	171

प्रकाशकीय

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की कृति '**अधूरी उल्टी आत्मकथा**' को प्रकाशित करते हुये हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

जिनागम के चारों ही अनुयोगों के मर्मज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल अब हमारे बीच नहीं रहे। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की जैनसमाज, मात्र जैनसमाज ही नहीं सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत उन्हें बड़े आदर से देखा करता था। अपने 87 वर्षीय जीवन में उन्होंने जो और जितना कार्य किया, आज उस पर आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति द्वारा इतना सारा कार्य कैसे किया जा सकता है? जिन्होंने उन्हें नहीं देखा, उन लोगों के लिए उनके विराट व्यक्तित्व की कल्पना करना भी दुष्कर होगा। आज लोगों को उनके समग्र जीवन के बारे में बता पाना असम्भव-सा लगता है; परंतु उनके द्वारा लिखित '**अधूरी उल्टी आत्मकथा**' के माध्यम से उसकी कुछ भरपाई करने का प्रयास कर रहे हैं। डॉ. साहब को भी इस बात का एहसास था कि उनके संपूर्ण जीवन को कागजों पर उतारना कोई आसान कार्य नहीं है, इसलिए उन्होंने स्वयं ही इस आत्मकथा के आगे **अधूरी उल्टी** शब्द जोड दिए।

डॉ. भारिल्ल का सम्पूर्ण जीवन चुनैतियों से भरा हुआ था, पर उन चुनौतियों के मध्य उन्होंने जिस रीति-नीति से कार्य किया, वह एक आदर्श मापदण्ड बन गया।

सोनगढ़ के आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा उद्घाटित जिन अध्यात्म को जन-जन तक पहुँचाने का भागीरथी कार्य उन्होंने

किया। उन्होंने बच्चों में तत्त्वज्ञान के संस्कार रोपने के लिये बालबोध व वीतराग पाठमालाओं की रचना की, पाठशाला समिति एवं परीक्षा बोर्ड की स्थापना की, उनके व्यवस्थित अध्ययन-अध्यापन के लिये शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों की रूपरेखा बनाई, अधिकारी विद्वान तैयार करने हेतु महाविद्यालय का संचालन किया सम्पूर्ण देश के साथ विदेश में भी जैनधर्म पहुँचाने के लिए अनेक विदेश यात्राएँ कीं। इसका परिणाम यह हुआ कि जो साधर्मी मूल तत्त्वज्ञान को समझने सोनगढ़ या जयपुर नहीं आ पाते थे, उनके लिये उन्होंने गाँव-गाँव में अध्यात्म केन्द्र स्थापित कर दिये।

इन सबके साथ-साथ उनकी लेखनी से भी अमृत की बरसात होने लगी, उन्होंने ने जिन रचनाओं का मौलिक लेखन किया, उनने अत्यंत दुष्कर मोक्षमार्ग की विधि को जनसाधारण के ज्ञान का विषय बना दिया। साथ ही समाज में समय-समय पर होने वाली उथल-पुथल के समय शान्ति व धैर्य के साथ इन सबसे उभरने के लिये ठोस मार्गदर्शन प्रदान किया।

उन्नीस अध्याय में विभक्त इस कृति में उक्त सभी कार्यों को स्पर्श किया है। आगामी नई पीढ़ी को डॉ. भारिल्ल की रीति-नीति से अवगत कराने के लिए एक सशक्त माध्यम बनेगी।

इस कृति के प्रकाशन का दायित्व सदा की भांति विभाग के प्रभारी डॉ. अखिल बंसल ने बखूबी सम्भाला है, पण्डित अखिल शास्त्री, मंडीदीप का सहयोग भी सराहनीय रहा है। टंकण व डिजाइनिंग का कार्य श्री कमल शर्मा ने किया। अतः तीनों का आभार।

विपिन जैन 'शास्त्री' मुम्बई
प्रकाशन मंत्री

अपनी बात

आज माघ शुक्ल त्रयोदशी रविवार तदनुसार 13 फरवरी सन् 2022 का दिन है और प्रात: के 5 बजकर 15 मिनट हुए हैं।

मैं मुम्बई के ब्रीचकैंडी अस्पताल के 301 रूम में अकेला हूँ। अध्यात्मप्रकाश बाहर के सोफे पर सो रहा है; क्योंकि इस रूम में वह इस समय आ नहीं सकता।

मैं अपने में तल्लीन था कि दो नर्सें मेरे पास आईं और बोलीं – हमें आपका ई.सी.जी. करना है।

मैंने कहा – कर लीजिये, पर ई.सी.जी. करने के उपरान्त मुझे चार कागज और एक पैन दीजियेगा; मैं कुछ लिखना चाहता हूँ।

ई.सी.जी. के बाद मैं प्रतीक्षा करता रहा, पर वे दूसरे किसी जरूरी काम में लग गईं। पाँच मिनट बाद मैंने देखा तो उनने कहा कि हम जरूरी काम कर रहे हैं, उसके बाद हम आपको कागज और पैन अवश्य देंगे। मैं उनकी प्रतीक्षा करता रहा। कुछ मिनट बाद वे कागज-पैन लाईं।

उसी के एक दिन पहले मेरा ऑपरेशन हुआ था और मुझे लग रहा था कि अब मैं स्वस्थ हो रहा हूँ और कुछ काम कर सकूँगा। मुझे क्या करना है? मैं इसकी योजना बना रहा था।

मेरी सीपीएपी[1] मशीन खराब हो रही थी और मैं रात के साढ़े तीन बजे तक सो नहीं पाया। नर्सें मुझे परेशान होते देख रही थीं और दस-बीस बार मेरे पास आईं और मेरी कुशलता जानती रहीं।

मुझे आत्मकथा लिखने के लिए अनेक लोग समय-समय पर प्रेरणा करते रहते हैं; पर मेरे साले जयकुमारजी तो पीछे ही पड़ गये और स्वयं के जीवन की अन्तिम साँस तक पीछे पड़े ही रहे।

अत्यधिक अभावों के बीच बीते बचपन के बारे में कुछ भी लिखने में मुझे कुछ सार नहीं दिखता; किन्तु जीवन के अन्त समय में मैं जैसा जीवन जी रहा हूँ; उसके प्रतिपादन में कुछ सारभूत बातें लिखी जा सकती हैं।

यद्यपि तेजी से भागते हुए इस जीवन का कोई भरोसा नहीं है; कभी भी समाप्त हो सकता है; इस कथा का अधूरा रहना सहज ही है; तथापि जितना लिखा जा सके, उतना ही सही......।

अत: यह कथा अधूरी ही रह जाएगी – यह मानकर ही आरम्भ कर रहा हूँ; इसलिए इसके नाम में अधूरा शब्द जोड़ रहा हूँ और आदि से आरम्भ न करके अन्त से आरम्भ कर रहा हूँ। ●

---

1. कॉन्टिन्यूअस पॉज़िटिव एयरवे प्रेशर (रात को सोते समय श्वसनमार्ग को खुला रखने हेतु प्रयोग की जाने वाली मशीन।)

“‘लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे’ की भावना से ओत-प्रोत होकर जीने और मरने के लिए सदैव तैयार रहना ही वास्तविक जीवन है।”

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

पहला अध्याय

मुक्ति का मार्ग साथ का मार्ग नहीं है

वे बोले – यह तो ठीक है, पर मैं तो यह पूँछ रहा हूँ कि अगले भव में कहाँ जाओगे ?

मैंने कहा – मेरी सुनिश्चित क्रमबद्धपर्याय में जहाँ जाना नक्की होगा, वहाँ सहजभाव से चला जाऊँगा। मुझे कुछ विशेष विकल्प नहीं है।

वे बोले – कि भगवान आपसे पूँछें कि तुम कहाँ जाना चाहते हो – तो आप क्या उत्तर दोगे ?

मैंने कहा – मैं किसी ऐसे भगवान को नहीं मानता जो लोगों से इसप्रकार पूँछते फिरें ?

मुक्ति का मार्ग साथ का मार्ग नहीं है, अकेले का मार्ग है। साथ की आकांक्षा तो निगोद का मार्ग है; मुक्ति के मार्ग में साथ का कोई स्थान नहीं है। वह तो अकेलेपन का मार्ग है।

मैंने तो बहुत पहले लिखा था कि –

ले दौलत-प्राणप्रिया को तुम, मुक्ति न जाने पावोगे।
यदि एकाकी चल पड़े नहीं तो, यहीं खड़े रह जावोगे।।

मुक्ति का मार्ग साथ का मार्ग नहीं है

आज मैं अत्यन्त सहज और शान्त जीवन जी रहा हूँ। इस जगत में जब जो जैसा घटित हो रहा है; वह मुझे अत्यन्त सहजभाव से सबकुछ सहज स्वीकृत है। उसमें कुछ भी फेरफार करने की बुद्धि नहीं है; क्योंकि मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ कि उसमें कुछ फेरफार संभव नहीं है।

परपदार्थों में तो कुछ किया ही नहीं जा सकता, पर का तो मैं कुछ कर ही नहीं सकता; अपने में भी जो हो रहा है, होने वाला है; उसमें भी कुछ फेरफार करना संभव नहीं है।

उक्त सभी कार्यों की अत्यन्त सहजभाव से सहज स्वीकृति ही धर्म है, सम्यग्श्रद्धा है, सम्यग्ज्ञान है और सहज आचरण है; सच्चा जीवन है। मैं अभी ऐसा जीवन ही जी रहा हूँ।

यद्यपि मैं यह सब अपनी किशोर-अवस्था से ही जानता रहा हूँ; तथापि जैसी दृढ़ता आज है, वैसी दृढ़ता आरम्भ में नहीं थी।

करीब तीन-चार साल पहले की बात है। मैं डॉक्टरों के हिसाब से जीवन के अन्तिम समय में था। यह बात लगभग सभी को मालूम थी; पर मुझे नहीं बताया गया था।

लोगों का मेरे पास आने पर प्रतिबंध था। पर मेरे एक दबंगमित्र पहरेदारों की उपेक्षा करते हुए मेरे पास आ ही गये। मेरी कुशलता के समाचार पूछकर बोले – ''आप कहाँ जावोगे?''

मैंने कहा – ''कहाँ जाऊँगा ? डॉक्टर लोग छुट्टी देंगे तो घर जाऊँगा और कहाँ जाऊँगा ?''

वे बोले – ''यह तो ठीक है, पर मैं तो यह पूछ रहा हूँ कि अगले भव में कहाँ जाओगे ?''

मैंने कहा – ''मेरी सुनिश्चित क्रमबद्धपर्याय में जहाँ जाना नक्की होगा, वहाँ सहजभाव से चला जाऊँगा। मुझे कुछ विशेष विकल्प नहीं है।''

वे बोले – ''कि भगवान आपसे पूछें कि तुम कहाँ जाना चाहते हो तो आप क्या उत्तर दोगे ?''

''मैं किसी ऐसे भगवान को नहीं मानता जो लोगों से इसप्रकार पूछते फिरें ?''

''फिर भी आपको यह तो सोचना ही चाहिये कि आखिर आप कहाँ जाना चाहते हैं ?''

मैंने कहा – ''जानते हो आप क्या कह रहे हैं ? आप मुझसे निदान नामक आर्त्तध्यान करने के लिए कह रहे हैं ?

मुझे संसार की किसी पर्याय की वांछा नहीं है। जब जैसा जो होना होगा, हो जायेगा; मुझे सब सहज स्वीकृत है। मेरी कोई माँग नहीं है।''

''बड़े-बड़े विद्वान तो कहते हैं कि वे तो पूज्य गुरुदेवश्री के साथ मोक्ष जावेंगे।''

''कहते होंगे, पर मैं किसी के साथ कहीं नहीं जाना चाहता।

आप जानते हैं, गुरुदेवश्री बहुत बड़े ज्ञानी-धर्मात्मा महापुरुष थे। वे ऊँचे से ऊँचे स्वर्ग में गये होंगे। वहाँ अनेक सागरों तक रहेंगे। इतने लम्बे काल तक संसार में रहने का मेरा विचार नहीं है।

मुक्ति का मार्ग साथ का मार्ग नहीं है, अकेले का मार्ग है। साथ की आकांक्षा तो निगोद का मार्ग है; मुक्ति के मार्ग में साथ का कोई स्थान नहीं है। वह तो अकेलेपन का मार्ग है।

मैंने तो बहुत पहले लिखा था कि –

ले दौलत–प्राणप्रिया को तुम, मुक्ति न जाने पावोगे।
यदि एकाकी चल पड़े नहीं तो, यहीं खड़े रह जावोगे।।

साथ की भावना संसार की भावना है, मुक्ति की भावना तो अकेलेपन की भावना है, एकत्व–अन्यत्व की भावना है।''

तब वे बोले – ''इस पर्याय से सीधे मोक्ष में तो जाने वाले हो नहीं, यहीं चतुर्गतिरूप संसार में ही कहीं ना कहीं जावोगे। तो...''

''तो क्या, जहाँ क्रमबद्धपर्याय के अनुसार जाना होगा, चले जावेंगे; पर भावना तो इन सबसे मुक्त होने की ही भावेंगे।

ज्ञानीजन तो संसार में कहीं जाने की भावना नहीं भाते। उनकी भावना तो सदा भव का अभाव करने की ही रहती है।

अरे भाई! सभी जीवों के अनादि से अनन्त काल तक के सभी भव पूर्ण सुनिश्चित ही हैं। किसके बाद कौनसा भव होगा – यह भी सुनिश्चित है और भव का अभाव कब होगा – यह भी सुनिश्चित है। तात्पर्य यह है कि भव का अभाव होगा या नहीं, यदि होगा तो कब होगा – यह सब पूर्व सुनिश्चित है; उसमें कुछ भी करना संभव नहीं है।

यद्यपि प्रत्येक द्रव्य अपनी परिणति का कर्त्ता–धर्त्ता स्वयं ही है; तथापि जो पूर्व निश्चित है, उसी का सहज कर्त्ता–धर्त्ता है; उसमें किसीप्रकार का फेरफार होना संभव नहीं है। केवली भगवान के ज्ञान में जो जैसा झलका है, आया है; वह वैसा ही होगा।

आप गुरुदेवश्री की शरण में आये हैं, उनमें और उनकी वाणी में पूरी श्रद्धा रखते हैं और जिनवाणी का श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करते हैं। अत: यह सब भी जानते होंगे। अत: भव की कामना की बात क्यों करते हैं?

भव को सुधारने की बातें तो खूब चलती हैं। त्रिभाग में आयुबंध होता है - यह कहकर जीवन के उत्तरार्द्ध में भावों को सुधारने का उपदेश दिया जाता है।

जब आगे के सब भव निश्चित ही हैं और उनमें कोई फेरफार नहीं किया जा सकता, तो फिर भावों को सम्भालने की बात का क्या अर्थ रह जाता है? क्योंकि अगले भव में जिस पर्याय में जाना है; उस भव में जाने के लिए जैसे भावों का जब होना आवश्यक है; तब वैसे भाव सहज ही होंगे - उनके कर्त्तृत्व का भार माथे पर क्यों रखना?

जब जो कुछ होना है; उस समय वह सब सहज भाव से ही हो रहा है, होगा; तो फिर उसमें फेरफार करने का भार क्यों रखना?

तत्संबंधी विकल्प क्यों रखना?''

''आप ठीक कहते हो, पर हम क्या करें विकल्प सहज ही होते हैं।''

''होते हैं तो होने दें।''

''उन्हें रोकने के भाव भी आते हैं।''

''आते हैं तो आने दें। सबकुछ सहज होने दें। आप तो करने-धरने के भार से निर्भार रहें। जो कुछ सहज हो रहा है, वह होने दें।''

वीतरागी-सर्वज्ञ भगवन्तों की दिव्यध्वनि के अनुसार बने शास्त्रों में भविष्य में कब-क्या-कैसे होगा - इस सम्बन्ध में अगणित घोषणायें की गई हैं। न केवल प्रथमानुयोग में, अपितु करणानुयोग में इसप्रकार के अगणित वचन आते हैं कि छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव ही निरन्तर नित्य-निगोद से निकलते हैं और इतने ही जीव छह महीने और आठ समय में मोक्ष जाते हैं। इसमें कोई फेरफार संभव नहीं है।

इन सबका कर्त्ता-धर्त्ता कोई नहीं है। यह सबकुछ सहज ही होता है। इन सबमें किसी की इच्छानुसार कुछ नहीं होता। जब हम कुछ कर ही नहीं सकते - इस बात का स्पष्ट उल्लेख है तो फिर कुछ करने-धरने का उपदेश ही क्यों दिया जाता है ?

अनन्त सुखी होने का एकमात्र उपाय ध्यान है और वह ध्यान सहज ज्ञानस्वरूप है।

परमध्यान का स्वरूप जो मुनिवर श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव ने द्रव्यसंग्रह में प्रस्तुत किया है; वह इसप्रकार है -

(गाथा)

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवेज्झाणं।।56।।

(हरिगीत)

बोलो नहीं सोचो नहीं अर चेष्टा भी मत करो।
उत्कृष्टतम यह ध्यान है निज आतमा में रत रहो।।56।।

कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी चिन्तवन मत करो। इससे अपना आत्मा निजात्मा में तल्लीन होकर स्थिर हो जायेगा। यह स्थिरता ही परमध्यान है।

उक्त गाथा की टीका लिखते हुए श्री ब्रह्मदेव लिखते हैं -

''हे विवेकीजनो! नित्य, निरंजन और निष्क्रिय निज शुद्धात्मा की अनुभूति को रोकने वाले शुभाशुभ चेष्टारूप काय व्यापार, शुभाशुभ अन्तर्बहिर्जल्परूप वचन व्यापार और शुभाशुभ विकल्पजालरूप चित्त व्यापार रंचमात्र भी मत करो - ऐसा करने से यह आत्मा तीन योग के निरोध से स्वयं में स्थिर होता है।''

देखो, यहाँ टीकाकार ब्रह्मदेव शुभाशुभ काय चेष्टारूप काय व्यापार, शुभाशुभ अन्तर्बहिर्जल्परूप वचन व्यापार और शुभाशुभ-

विकल्पजल्परूप चित्त (मन) व्यापार को शुद्धात्मा की अनुभूति को रोकने वाला बता रहे हैं; क्योंकि ध्यान शुद्धभाव रूप है और ये सभी शुभाशुभ भाव अशुद्धभावरूप हैं।

आगे की टीका में लिखते हैं –

''सहज–शुद्ध–ज्ञान–दर्शनस्वभावी परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अभेद रत्नत्रयात्मक परमसमाधि से उत्पन्न, सर्वप्रदेशों में आनन्द उत्पन्न करनेवाले सुख के आस्वादरूप परिणति सहित, निजात्मा में रत–परिणत–तल्लीन–तच्चित्त–तन्मय होता है।

आत्मा के सुखस्वरूप में तन्मयपना ही निश्चय से परमध्यान है, उत्कृष्ट ध्यान है। उस परमध्यान में स्थित जीवों को जिस वीतराग परमानन्दरूप सुख का प्रतिभास होता है, वही निश्चय मोक्षमार्गस्वरूप है।''

ध्यान के उक्त स्वरूप में कुछ भी चेष्टा नहीं करनी है, कुछ भी बोलना नहीं और कुछ भी सोचना नहीं है; मात्र सहज भाव से जानते रहना है।

काय की चेष्टा, बोलना और सोचना तो निरन्तर चालू ही है। अभी तक जो शक्ति इनमें लग रही है; अब उस शक्ति को इनके रोकने में लगानी है।

नहीं, ऐसा कुछ नहीं करना है। इन्हें न तो करना है और न रोकना है। ये सब कार्य तो जड़ की क्रिया हैं। इनमें कुछ नहीं करना है।

परपदार्थों का तो यह आत्मा कुछ करता ही नहीं है, कर ही नहीं सकता है। इन्हें तो सहजभाव से जानते रहना है, देखते रहना है। इनका तो सहज ज्ञाता–दृष्टा ही रहना है। बिना विकल्प के सहजभाव से जानते–देखते रहना ही इसका सहज स्वभाव है।

किसे जानते–देखते रहना है?

प्रत्येक संसारी जीव की क्षयोपशमज्ञान की पर्याय का ज्ञेय सुनिश्चित है। उसे ही जानते-देखते रहना है।

ध्यान की अवस्था में सहजभाव से तो आत्मा का ही जानना होता है; परन्तु कदाचित् अन्य का भी जानना होता है, पर वीतरागता खण्डित नहीं होती है; इसलिए ध्यान कायम रहता है।

अत: यह सिद्ध ही है कि ज्ञान की पुनरावृत्ति (रिपीटेशन) ही ध्यान है। हमारे सभी तीर्थंकर ध्यान में सहजभाव से यही सब करते रहे हैं। यही वास्तविक धर्म है। यही सभी प्रकार के दु:खों से मुक्ति का उपाय है।

मन, वचन और काय के व्यापार से पूर्णत: निवृत्तिरूप और निर्विकल्प ज्ञानभाव की पुनरावृत्तिरूप ध्यान कैसे होता है? – इस प्रश्न का उत्तर सहजभाव से (आसानी से) प्राप्त नहीं होता।

मुनिराज छह घड़ी प्रात:, छह घड़ी दोपहर और छह घड़ी शाम को सामायिक (ध्यान) करते हैं; व्रती श्रावक चार-चार घड़ी और अविरत सम्यग्दृष्टि दो-दो घड़ी सामायिक (ध्यान) करते हैं। मिथ्यादृष्टियों के तो ध्यान (सामायिक) होता ही नहीं है।

जितने भी जीवों ने आजतक केवलज्ञान की प्राप्ति की है, अरहंत-सिद्ध दशा की प्राप्ति की है; वह सब ध्यान की अवस्था में ही की है। वह ध्यान की अवस्था कैसी होती है – यह जानना प्रत्येक आत्मार्थी को अत्यन्त आवश्यक है।

जिस ध्यान के लगातार अन्तर्मुहूर्त तक होने पर केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है; वह ध्यान कैसा होगा – इस बात पर गम्भीरता से विचार होना चाहिये।

आखिर अपने आत्मा और परमात्मा अर्थात् पंच परमेष्ठियों को सहज जाननेरूप निर्विकल्प ध्यान कैसे रहता है; उसका क्या रूप है, उसका क्या स्वरूप है – मूलत: यही जानना यहाँ अभीष्ट है।

अधिकांश देखा तो यह जाता है कि लोग सामायिक अर्थात् ध्यान के नाम पर णमोकार महामंत्र का जाप या किसी स्तोत्र विशेष का पाठ करते रहते हैं; परन्तु यह सब तो आम्नाय नाम के स्वाध्याय में आता है।

समस्या यह है कि बार-बार ध्यान आकृष्ट करने पर भी लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जाता। मैं उन लोगों से, जो लोग इस बारे में कुछ भी जानते हैं, उनसे अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वे लोग कृपाकर स्पष्ट अवश्य करें।

मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। मैं तो सहजभाव से यह जानना चाहता हूँ; अत: निवेदन कर रहा हूँ। •

**"मोक्ष की प्राप्ति के लिए
मोक्ष की भावना से भी अधिक महत्त्व
मोक्षमार्ग की भावना का है।"**

**"स्वभावसन्मुखता
के अतिरिक्त और कोई
मुक्ति का मार्ग नहीं है।"**

**"मुक्ति का मार्ग शान्ति का मार्ग है,
तनाव का नहीं, व्यग्रता का नहीं।"**

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

दूसरा अध्याय

क्या भगवान करुणानिधि हैं?

करुणानिधि तुमको समझ नाथ,
भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम,
यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतरागी हो लीन स्वयं में,
कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत,
इतना न मैंने पहिचाना।।

जैनेतर की तो बात ही क्या करें, जैनों के भी गले में यह बात आसानी से नहीं उतरती; अपने को आचार्य कुन्दकुन्द का, आचार्य अमृतचन्द्र का, आचार्य जयसेन का, पण्डितप्रवर टोडरमलजी का तथा आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी का कट्टर अनुयायी मानते हुए भी करुणाभाव को दर्शनमोह का चिन्ह नहीं मानते; हम उनके लिए क्या कहें ?

क्या भगवान करुणानिधि हैं?

भगवान की स्तुति करते हुए कुछ मनीषी उन्हें दयानिधि, करुणा-सागर कहते हैं? मैं अपने बचपन से ही इसके बारे में सोचता रहा हूँ।

मैंने 22-23 वर्ष की उम्र में सन् 1957-58 में देव-शास्त्र-गुरु पूजन लिखी थी। उसकी जयमाला में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा था -

करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत इतना न मैंने पहिचाना।।

इसका अत्यन्त स्पष्ट अर्थ यह है कि - हे भगवन्! मैंने आपको करुणानिधि समझा, इसलिए भगवान (आपके) भरोसे ही पड़ा रहा; यही सोचता रहा कि आप ही (भगवान ही) मुझे पूर्ण सुखी कर देंगे। यह सोचकर ही आपके सामने खड़ा रहा।

किन्तु आज समझ में आया है कि आप तो पूर्णत: वीतरागी हैं और स्वयं में लीन हैं। मैंने इस बात को कभी जाना ही नहीं कि तुम तो इस जगत से एकदम विरक्त हो और कृत-कृत्य हो गये हो, किसी का कुछ भी नहीं करते। मैंने इतनी-सी बात की पहिचान नहीं की। यही कारण है कि मैं आपको कर्त्ता-धर्त्ता मानता रहा।

इसप्रकार वीतरागी भगवान को किसी का कर्त्ता-धर्त्ता मानना और उनसे किसी भी प्रकार की माँग करना अज्ञान है।

यद्यपि मैंने उस समय प्रवचनसार ग्रन्थ नहीं पढ़ा था, पर यह तो जानता था कि भगवान दया के सागर नहीं हैं; दया तो मोहोदय से होने वाला एक विकार है। उन्होंने तो मोह का पूर्णत: अभाव कर दिया है।

सिद्धचक्र विधान में भी कहा गया है –

परदुख में दुख हो जहाँ, मोह प्रकृति के द्वार।
दया कहैं तिसको सुमति, सो तुम दया निवार।।
ॐ ह्रीं अर्हं अत्यन्तनिर्दयाय नम: अर्घ्यं.।।979।।[1]

जब से ही उक्त पूजन को हजारों लोग प्रतिदिन पढ़ते हैं; पर किसी का भी ध्यान उक्त तथ्य की ओर नहीं जाता, कोई भी उस पर विशेष ध्यान नहीं देता और भगवान से दया की भीख माँगता रहता है। वे हमें सुखी कर देंगे – ऐसा मानता रहता है।

जबकि पण्डित श्री टोडरमलजी साहब ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है –

''तथा उन अरहन्तों को स्वर्ग–मोक्षदाता, दीनदयाल, अधम–उधारक, पतितपावन मानता है; सो जैसे अन्यमती कर्तृत्वबुद्धि से ईश्वर को मानता है; उसीप्रकार यह अरहन्त को मानता है। ऐसा नहीं जानता कि फल तो अपने परिणामों का लगता है, अरहन्त उनको निमित्तमात्र हैं, इसलिये उपचार द्वारा ये विशेषण सम्भव होते हैं।

अपने परिणाम शुद्ध हुए बिना अरहन्त ही स्वर्ग–मोक्षादि के दाता नहीं हैं। तथा अरहन्तादिक के नामादिक से श्वानादिक ने स्वर्ग प्राप्त किया, वहाँ नामादिक का ही अतिशय मानते हैं; परन्तु बिना परिणाम के नाम लेनेवाले को भी स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती, तब सुननेवाले को कैसे होगी? श्वानादिक को नाम सुनने के निमित्त से कोई मन्दकषायरूप भाव हुए, उनका फल स्वर्ग हुआ है; उपचार से नाम ही की मुख्यता की है।

1. सिद्धचक्र विधान, आठवीं पूजन – छन्द नं. 979

तथा अरहन्तादिक के नाम-पूजनादिक से अनिष्ट सामग्री का नाश तथा इष्ट सामग्री की प्राप्ति मानकर रोगादि मिटाने के व धनादिक की प्राप्ति के अर्थ नाम लेता है व पूजनादि करता है।

सो इष्ट-अनिष्ट का कारण तो पूर्वकर्म का उदय है, अरहन्त तो कर्त्ता है नहीं। अरहन्तादिक की भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामों से पूर्व पाप के संक्रमणादि हो जाते हैं, इसलिये उपचार से अनिष्ट के नाश का व इष्ट की प्राप्ति का कारण अरहन्तादिक की भक्ति कही जाती है; परन्तु जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजनसहित भक्ति करता है, उसके तो पाप ही का अभिप्राय हुआ। कांक्षा, विचिकित्सारूप भाव हुए - उनसे पूर्वपाप के संक्रमणादि कैसे होंगे? इसलिये उसका कार्य सिद्ध नहीं हुआ।

तथा कितने ही जीव भक्ति को मुक्ति का कारण जानकर वहाँ अति अनुरागी होकर प्रवर्तते हैं। वह तो अन्यमती जैसे भक्ति से मुक्ति मानते हैं; वैसा ही इनके भी श्रद्धान हुआ। परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बन्ध है, इसलिये मोक्ष का कारण नहीं है।

जब राग का उदय आता है, तब भक्ति न करे तो पापानुराग हो; इसलिये अशुभराग छोड़ने के लिये ज्ञानी भक्ति में प्रवर्तते हैं और मोक्षमार्ग को बाह्य निमित्तमात्र भी जानते हैं; परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानकर सन्तुष्ट नहीं होते, शुद्धोपयोग के उद्यमी रहते हैं।''[1]

वही पंचास्तिकाय व्याख्या में कहा है -

''इयं भक्तिः केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वर-विनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोऽपि भवति।[2]

1. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ - 222

2. अयं हि स्थूललक्षतया केवलभक्तिप्रधान्यस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकाया-मलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति। (पंचास्तिकाय गाथा 136 की टीका)

अर्थ – यह भक्ति, केवल भक्ति ही है प्रधान जिसके – ऐसे अज्ञानी जीव के होती है तथा तीव्ररागज्वर मिटाने के अर्थ या कुस्थान के राग का निषेध करने के अर्थ कदाचित् ज्ञानी के भी होती है।''[1]

प्रवचनसार में तो करुणा को स्पष्ट रूप से मोह का चिन्ह कहा है। गाथा मूलत: इसप्रकार है –

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसएसु य प्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि।।85।।

(हरिगीत)

अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति।
और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं।।85।।

पदार्थों का अयथार्थ ग्रहण, तिर्यंच और मनुष्यों के प्रति करुणाभाव तथा विषयों का प्रसंग अर्थात् इष्ट विषयों के प्रति प्रेम और अनिष्ट विषयों से द्वेष – ये सब मोह के चिह्न हैं।''

उक्त गाथा का भाव तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र इसप्रकार करते हैं –

''पदार्थों की अयथार्थ प्रतिपत्ति तथा तिर्यंच और मनुष्यों के प्रेक्षायोग्य होने पर भी उनके प्रति करुणाबुद्धि से मोह को, इष्टविषयों की आसक्ति से राग को तथा अनिष्ट विषयों की अप्रीति से द्वेष को – इसप्रकार तीनों चिह्नों से तीनों प्रकार के मोह को पहिचान कर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिए।''

वैसे तो आचार्य जयसेन तात्पर्यवृत्ति में इस गाथा के भाव को आचार्य अमृतचन्द्र की तत्त्वप्रदीपिका के समान ही स्पष्ट करते हैं; फिर भी वे करुणाभाव शब्द का अर्थ निश्चय से करुणाभाव और व्यवहार से करुणा का अभाव – इसप्रकार दो प्रकार से करते हैं।

1. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ – 222

जो कुछ भी हो, पर इतना तो सुनिश्चित ही है कि निश्चय से करुणाभाव कहकर उन्होंने भी आचार्य अमृतचन्द्र के अभिप्राय को प्राथमिकता दी है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यहाँ करुणाभाव को मोह का चिह्न बताया गया है। करुणाभाव को यदि चारित्रमोह का चिह्न बताया होता, तब तो कोई बात ही नहीं थी; क्योंकि करुणा शुभभावरूप राग में आती है और पुण्यबंध का कारण है; किन्तु यहाँ तो उसे दर्शनमोह अर्थात् मिथ्यात्व का चिह्न बताया गया है; जो करुणा को धर्म माननेवाले जगत को एकदम अटपटा लगता है।

आचार्य जयसेन को भी इसप्रकार का विकल्प आया होगा। यही कारण है कि वे नयों का प्रयोग कर संधिविच्छेद के माध्यम से करुणाभाव शब्द का करुणाभाव और करुणा का अभाव – ये दो अर्थ करते हैं। उनके लिए यह सब अटपटा भी नहीं लगता, क्योंकि वे सदा ही अपनी बात को नयों के माध्यम से स्पष्ट करते आये हैं।

पुण्य के बंध के कारण शुभभावरूप होने से वह व्यवहारधर्म है भी; किन्तु उक्त सम्पूर्ण मंथन के उपरान्त यह बात तो स्पष्ट हो ही गयी है कि दूसरों को मारने-बचाने और सुखी-दुखी करने की मिथ्यामान्यतापूर्वक होनेवाला करुणाभाव सचमुच मोह (मिथ्यात्व) का ही चिह्न है।

जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर ही नहीं सकता तो फिर बचाने और सुखी करने की मान्यतापूर्वक होनेवाला बचाने व सुखी करने के भाव को सम्यक्त्व का चिह्न कैसे माना जा सकता है?

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने तत्त्वप्रदीपिका का आधार लेकर इस बात को इस रूप में स्पष्ट किया है कि परपदार्थ तो प्रेक्षायोग्य हैं, ज्ञेय हैं, जाननेयोग्य हैं; उन्हें अपने में उत्पन्न होनेवाले करुणाभाव के कारण के रूप में देखना अज्ञान नहीं है तो और क्या है?

वे मेरे में उत्पन्न होनेवाले करुणाभाव के कारण नहीं, अपितु ज्ञेय होने से उनका ज्ञान होने में कारण हैं। उन्हें ज्ञेयरूप में देखना ही समझदारी है।

इसीप्रकार इष्ट-अनिष्ट बुद्धिपूर्वक होनेवाले राग-द्वेष भी मोह (मिथ्यात्व) के ही चिह्न हैं; क्योंकि ज्ञानी के जो राग-द्वेष पाये जाते हैं; वे इष्ट-अनिष्ट बुद्धिपूर्वक नहीं होते।

प्रश्न – व्यवहार से ही सही, पर आचार्य जयसेन ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि करुणा का अभाव मोह का चिह्न है; पर आप....।

उत्तर – अरे भाई! आचार्य जयसेन तो यह कहना चाहते हैं कि वास्तविक (निश्चय) बात तो यही है कि करुणाभाव दर्शनमोह का चिह्न है; किन्तु यदि कहीं शास्त्रों में ऐसा लिखा मिल जाए कि करुणाभाव का अर्थ करुणा का अभाव होता है तो उसे व्यवहारकथन ही समझना चाहिए; क्योंकि लोक में करुणाभाव को धर्म कहा ही जाता है, माना भी जाता है।

महाकवि तुलसीदासजी तो यहाँ तक लिखते हैं –

दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जबतक घट में प्राण।।

एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि दया के अभावरूप जो क्रूरता है; वह भी मोह (मिथ्यात्व) का ही चिह्न है और वीतरागतारूप करुणा का अभाव ही सम्यक्त्वरूप धर्म का चिह्न है। कर्तृत्वबुद्धिपूर्वक परजीवों को बचाने या सुखी करने के भावरूप करुणा और मारने या दुखी करने के भावरूप करुणा का अभाव – दोनों ही दर्शनमोह के चिह्न हैं।

दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि ज्ञानी श्रावक और मुनिराजों के भूमिकानुसार करुणाभाव पाया ही जाता है। जिसप्रकार का

करुणाभाव उनके पाया जाता है, वह दर्शनमोह का चिह्न नहीं है; पर वह चारित्रमोह का चिह्न तो है ही।

तात्पर्य यह है कि मिथ्यामान्यतापूर्वक अनंतानुबंधी रागरूप करुणा और द्वेषरूप क्रूरता (करुणा का अभाव) दोनों दर्शनमोह के चिह्न हैं और मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभावपूर्वक अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों से होनेवाला करुणाभाव यद्यपि यह बताता है कि उनके चारित्रमोह विद्यमान है; अत: वह चारित्रमोह का चिह्न तो है, पर दर्शनमोह का चिह्न कदापि नहीं।

आचार्य अमृतचन्द्र पंचास्तिकायसंग्रह की समयव्याख्या टीका में ज्ञानी और अज्ञानी के करुणाभाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि किसी तृषादि दुख से पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण उसका प्रतिकार करने की इच्छा से चित्त में आकुलता होना अज्ञानी की अनुकंपा है और ज्ञानी की अनुकंपा तो निचली भूमिका में विहरते हुए जगत में भटकते हुए जीवों को देखकर मन में किंचित् खेद होना है।

देखो, यहाँ स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि अनुकंपा दुखरूप होती है। यह बात आचार्य कुन्दकुन्द की मूल गाथा में भी इसी रूप में विद्यमान है।[1]

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि सन् 1957 से लगातार पूजन में पढ़ते हुए और आचार्य कुन्दकुन्द के मूल प्रवचनसार, उसकी आचार्य अमृतचन्द्र कृत तत्त्वप्रदीपिका टीका, आचार्य जयसेन कृत तात्पर्यवृत्ति टीका, पंचास्तिकाय संग्रह की आचार्य अमृतचन्द्र कृत समयव्याख्या टीका, सिद्धचक्र विधान और मोक्षमार्ग प्रकाशक में स्पष्ट उल्लेख होने पर भी; उक्त पूजन के बार-बार पढ़ने तथा गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों में सुनने पर भी तथा मेरे द्वारा बार-बार जोर देकर कहने पर भी

1. पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा 137 एवं उसकी समयव्याख्या टीका।

लोगों का ध्यान नहीं जाता, उनके चित्त को स्वीकृत नहीं होता – यह बहुत आश्चर्य की बात है।

अरे, भाई! ऐसे महान सत्य स्वयं की काललब्धि आये बिना गले नहीं उतरते। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता–भोक्ता नहीं है, सभी द्रव्यों के अनादि–अनन्त सुनिश्चित परिणमन में भी किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है – ऐसे महान सत्य भी काललब्धि आये बिना गले नहीं उतरते।

जैनेतर की तो बात ही क्या करें, जैनों के भी गले में यह बात आसानी से नहीं उतरती; अपने को आचार्य कुन्दकुन्द का, आचार्य अमृतचन्द्र का, आचार्य जयसेन का, पण्डित टोडरमलजी का तथा आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी का अनुयायी, कट्टर अनुयायी मानते हुए भी करुणाभाव को दर्शनमोह (मिथ्यात्व) का चिह्न नहीं मानते; हम उनके लिए क्या कहें?

उनके लिए हम अधिक तो क्या कहें? यही मानकर सन्तोष करना पड़ता है कि उनका भी अभी संसार–समुद्र का किनारा नजदीक नहीं आया होगा। ●

"भोगों की आकांक्षा से भगवान की भक्ति करने वाला भगवान का भक्त नहीं, भोगों का भिखारी है।"

"जैनधर्म में व्यवस्था है, पर व्यवस्थापक नहीं।"

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अधूरी उल्टी आत्मकथा

तीसरा अध्याय

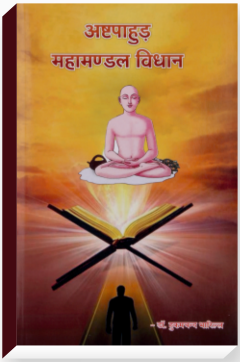

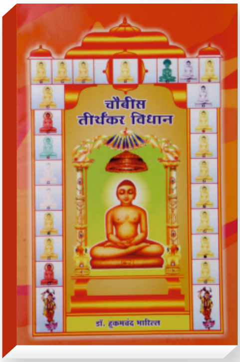

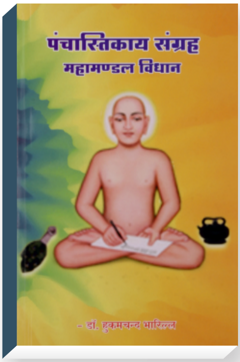

पूजन-विधान का तत्त्वप्रचार में योगदान

"मुझे आश्चर्य होता है कि उस अल्पवय में भगवान के स्वरूप के सन्दर्भ में परमसत्य सहजभाव से समझ में आया और चित्त को सहज स्वीकृत हुआ। कितने सरल शब्दों में कितना महान सत्य स्पष्ट हो गया, उसकी महिमा आज आ रही है। भगवान के सत्य स्वरूप की उक्त दोनों बातें मेरे हृदय में जमी हैं, इसलिये इन सबके प्रति मैं एकदम सहज हूँ।"

"सम्पूर्ण समाज ने इन पूजनों को जिस श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है और इनका उपयोग सच्चे दिल से सारे देश-विदेश में हो रहा है; वह अपने-आप में अद्भुत है, चित्त को प्रसन्न करने वाला है। इस पूजन के माध्यम से जैनतत्त्वज्ञान की मूल बातें सहजभाव से ही जन-जन की जबान पर चढ़ गयी हैं। यह छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है।"

पूजन-विधान का तत्त्वप्रचार में योगदान

पूजनों के माध्यम से भी मुमुक्षु समाज में एक आध्यात्मिक क्रान्ति हुई है; जिन-अध्यात्म को जन-जन तक पहुँचाने का महान काम हुआ है।

सबसे पहले श्री जुगलकिशोरजी युगल ने देव-शास्त्र-गुरु पूजन लिखी थी; आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने, जिस अध्यात्म की इस युग में नींव रखी थी; उस अध्यात्म को युगलजी कृत देव-शास्त्र-गुरु पूजन ने पुजारियों तक, पूजापाठ में रस लेने वालों तक सहज ही पहुँचा दिया।

जहाँ मुमुक्षु मण्डल नहीं थे, वहाँ पर भी लोग गाँव-गाँव में युगलजी द्वारा लिखी देव-शास्त्र-गुरु पूजन मधुर स्वर में गा-गाकर किया करते थे और भक्ति का आनन्द लेते थे।

उन दिनों हिन्दी-भाषी प्रान्त में आदरणीय खीमचन्दभाई सेठ एवं बाबूभाई मेहता के अत्यन्त लोकप्रिय प्रवचनों ने धूम मचा रखी थी; वहीं दूसरी ओर युगलजी कृत पूजन ने समाज में अपनी पकड़ बना ली थी। युगलजी एक अच्छे प्रवचनकार भी थे। उनके प्रवचनों की भी खूब माँग रहती थी।

प्रत्येक अष्टाह्निका में गाँव-गाँव में सिद्धचक्र विधान हुआ करते थे। सिद्धचक्र विधान कराने मैं भी जाया करता था। सिद्धचक्र विधान की पूजनों की जयमालाओं का जो अर्थ मैं किया करता था, वह आध्यात्मिक तो होता ही था; सभी को बहुत आकर्षित करता था। बाद

में तो यह स्थिति हो गई थी कि बहुत से लोग तो मुझे मात्र जयमालाओं का अर्थ करने के लिए ही बुलाया करते थे।

आदरणीय बाबूभाईजी मेहता से मेरा परिचय एक जयमाला का अर्थ करने के माध्यम से ही हुआ था।

मैं गुना (म.प्र.) में बाज़ार के मन्दिर में सिद्धचक्र विधान करा रहा था। उस वर्ष पर्यूषण में आदरणीय बाबूभाईजी मेहता दिगम्बर जैन रामाशाह मन्दिर, मल्हारगंज, इन्दौर में आये हुये थे। वहाँ उनके प्रवचन बहुत ही लोकप्रिय हो रहे थे। पर्यूषण के बाद वे गुना (म.प्र.) भी आये थे। मैं वहाँ विधान करा रहा था।

दोपहर का समय था, मैं पूजन में जयमाला का अर्थ कर रहा था कि एकदम अचानक अपने साथियों के साथ बाबूभाई आ गये। मैंने प्रवचन बन्द कर दिया, गद्दी से उठ गया। मैंने गद्दी खाली कर दी और वह पुस्तक बाबूभाई को दे दी।

बाबूभाईजी ने कहा – ''जो अर्थ पण्डितजी कर रहे थे, वह तो वे ही करेंगे। मैं तो, मुझे जो कुछ कहना है, वही कहता हूँ।'' दस-पन्द्रह मिनट प्रवचन करके जयमाला का अर्थ करने के लिए उन्होंने मुझे गद्दी सौंप दी।

जयमाला की वे पंक्तियाँ इसप्रकार थीं –

अकथित महिमा अमित अथाई, निर-उपमेय सरसता नाई।
भावलिंग बिन कर्म खिपाई, द्रव्यलिंग बिन शिव पद पाई।।

नय विभाग बिन वस्तु प्रमाणा, दया भाव बिन निज कल्याणा।
पंगु सुमेरु चूलिका परसै, गुंग गान आरम्भे स्वर सै।।

यों अजोग कारज नहीं होई, तुम गुण कथन कठिन है सोई।
सर्व जैन-शासन जिनमाहीं, भाग अनन्त धरै तुम नाहीं।।

गोखुर में नहिं सिंधु समावे, वायस लोक अन्त नहीं पावै।
तातें केवल भक्ति भाव तुम, पावन करो अपावन उर हम।।[1]

हे जिनेश्वर देव! सिद्ध भगवान की महिमा वाणी से नहीं कही जा सकती, वह अपरिमित है, अथाह है, उसकी कोई थाह (गहराई) नहीं पा सकता, ऐसी कोई उपमा भी नहीं है, जिससे सिद्ध भगवान की महिमा समझाई जा सके। सिद्ध भगवान की महिमा के समान अन्य कोई सरस नहीं है।

जिसप्रकार भावलिंग धारण किये बिना कर्मों को नहीं खिपाया जा सकता, द्रव्यलिंग के बिना मुक्ति नहीं पायी जा सकती।

जिसप्रकार नय विभाग को समझे बिना वस्तु को प्रमाणित नहीं किया जा सकता और दया भाव (निश्चय दया अर्थात् वीतरागता) के बिना आत्मकल्याण नहीं किया जा सकता। जिसप्रकार लँगड़ा आदमी सुमेरु पर्वत की चोटी का स्पर्श नहीं कर सकता, गूँगा व्यक्ति मधुर स्वर से गाना नहीं गा सकता।

जिसप्रकार ये सभी कार्य असंभव हैं; उसीप्रकार हे सिद्ध भगवान! आपके गुणों का कथन कठिन है।

सम्पूर्ण जैन शासन में जो शास्त्र हैं; वे सभी आपके गुणों के अनंतवें भाग को भी धारण नहीं कर सकते।

मैं अधिक क्या कहूँ? जिसप्रकार गोखुर[2] में सिंधु नहीं समा सकता, कौआ लोक का अंत नहीं पा सकता; उसीप्रकार मैं आपके गुणों का वर्णन नहीं कर सकता। अत: केवल भक्तिभाव से आपके गुणों को गाता हूँ। हे प्रभो! मेरे इस अपवित्र हृदय को पवित्र कर दो।

---

1. सिद्धचक्र विधान : चतुर्थ जयमाला, छन्द – 3, 4, 5, 6
2. बरसात के दिनों में जंगल में कीचड़ हो जाता है। उस कीचड़ में गायें चलती हैं तो उनके पैरों के खुरों के निशान बन जाते हैं, फिर वे सूख जाते हैं; उन छोटे-छोटे गड्ढों को गोखुर कहते हैं।

उक्त व्याख्यान सुनकर बाबूभाई बहुत प्रभावित हुए, वहीं सभा में कहने लगे – आप बहुत अच्छा अर्थ करते हैं। मैं आपको गुजरात में अपने एरिया में ले चलूँगा; गाँव-गाँव ले जाऊँगा, स्थान-स्थान पर आपके प्रवचन कराऊँगा।

इसके पहले आदरणीय बाबूभाईजी से मेरा परिचय सोनगढ़ शिविर में हो चुका था। सन् 1958 के श्रावण मास के शिविर में हम आठ जन सोनगढ़ गये थे। बाबूभाईजी भी अपने 15-20 साथियों के साथ वहाँ आये थे।

श्राविकाश्रम के जिस हॉल में वे ठहरे थे, उसी हॉल के बगल के कमरे में हम ठहरे थे। वे अपने साथ आये मुमुक्षु भाइयों की कक्षा लेते थे। ●

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

तब तक मैंने भी देव-शास्त्र-गुरु की पूजन लिख ली थी। उसे छपाकर चाँदखेड़ी (राज.) में पूज्य गुरुदेवश्री को भेंट की थी। उसके प्रथम पेज पर लिखा था –

समर्पण

''उन पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के करकमलों में सादर समर्पित;
जिन्होंने इस कलिकाल में क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप समझाकर;
हम जैसे पामर प्राणियों पर अनन्त उपकार किया....

– हुकमचन्द भारिल्ल

पूज्य गुरुदेवश्री ने उसे पढ़ा और कहा –

तुम '**क्रमबद्धपर्याय**' जानते हो?

हमने कहा – हाँ, जानते हैं।

उन्होंने अत्यन्त स्नेह से आमन्त्रण दिया कि शिविर में सोनगढ़ आना, वहीं बात करेंगे।

दूसरे दिन चाँदखेड़ी से वे संघ सहित कोटा चले गये। वहाँ उनका आठ दिन का कार्यक्रम था। हम भी उनके साथ कोटा चले गये।

वहाँ युगलजी तो होस्ट ही थे। गुरुदेवश्री की सभा में मुझे और पण्डित गेन्दालालजी बूँदी को 15-15 मिनट बोलने का समय मिला।

मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने वहाँ क्या बोला था। मैंने कहा था कि असली कानजीस्वामी ये नहीं, (बुक स्टॉल की ओर इशारा करते हुए) वे हैं। उस साहित्य में जो तत्त्वज्ञान छपा है, वही असली कानजीस्वामी हैं।

युगलजी कृत देव-शास्त्र-गुरु पूजन में एक विशेषता यह थी कि उसकी जयमाला में बारह भावनाओं का सुन्दर चित्रण था, जो लोगों को बहुत आकर्षित करता था। मुझे भी बहुत अच्छा लगता था।

जब भी मैं उसे पढ़ता, पूजन करता तो मुझे विकल्प आता था कि जयमाला में तो देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप समझाना था, उनका गुणगान करना था। बारह भावनायें तो स्वतंत्ररूप से लिखी जानी चाहिये। मैंने युगलजी से उक्त सन्दर्भ में चर्चा भी की थी।

मेरे चित्त में देव-शास्त्र-गुरु की एक ऐसी स्तुति लिखने का भाव आया कि जिसमें देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का विचार किया गया हो, चिन्तवन किया गया हो।

अभी जो देव-शास्त्र-गुरु पूजन की जयमाला है, वह पहले देव-शास्त्र-गुरु की स्तुति के रूप में ही लिखी गई थी।

उसमें मैंने देव की स्तुति करते हुए सबसे पहले लिखा कि-

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अबतक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।

करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।

तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।

प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।

उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।

हे वीतरागी सर्वज्ञ भगवान! आज तक आपको सही रूप में नहीं पहिचाना; इसीलिये 84 लाख योनियों में चक्कर काटने पड़ रहे हैं।

आपको पहिचानने में सबसे पहली और सबसे बड़ी भूल तो यह हुई है कि आपको करुणानिधि (दया का सागर) समझा और आपके भरोसे ही पड़ा रहा। यही मानता रहा कि आप मुझे भरपूर सुखी कर दोगे; इसलिये आपके सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

तुम तो पूर्ण वीतरागी हो, कभी-भी किसी का कुछ करते ही नहीं हो, तुम तो कृतकृत्य हो, पूरी तरह निरीह हो। मैं यह नहीं जान पाया; इसलिये आपके भरोसे पड़ा रहा।

हे सर्वज्ञ भगवान! आपकी वाणी में तो यह बताया है कि सभी कुछ निश्चित है। उस पर तो श्रद्धान किया नहीं और परिवर्तन का अभिमान किया। पर का कर्त्ता-धर्त्ता बन सत् का अर्थात् वस्तुस्वरूप का सम्मान नहीं किया।

जो कुछ, जिसका, जब, जहाँ सहजभाव से हो रहा है; उसे सहजभाव से जान लेना, जानते रहना, जानने में न आये तो आकुल-

व्याकुल नहीं होना, विकल्प न आना ही उसका सहज सम्मान है। जो मैंने नहीं किया।

मुझे आश्चर्य होता है कि उस अल्पवय में भगवान के स्वरूप के सन्दर्भ में परमसत्य सहजभाव से समझ में आया और चित्त को सहज स्वीकृत हुआ।

कितने सरल शब्दों में कितना महान सत्य स्पष्ट हो गया, उसकी महिमा आज आ रही है।

भगवान के सत्य स्वरूप की उक्त दोनों बातें मेरे हृदय में जमी हैं, इसलिये इन सबके प्रति मैं एकदम सहज हूँ।

सन् 1957 में लिखी गई देव-शास्त्र-गुरु स्तुति में, जो बाद में देव-शास्त्र-गुरु पूजन की जयमाला बन गई; देव के स्वरूप में वीतरागता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए देव में करुणा का अभाव और सर्वज्ञता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए 'क्रमबद्धपर्याय' को प्रस्तुत कर दिया था। यह भी अत्यन्त स्पष्ट कर दिया कि पर का कर्त्ता बनना वस्तु के सत्य स्वरूप का अपमान है।

उक्त दोनों बातों में मेरी अकाट्य श्रद्धा अटूट रूप से आजतक लगातार बनी हुई है। इन 65 वर्षों में मुझ पर इन पंक्तियों को हटा देने का अधिकतम दबाव आया है; पर मैं टस-से-मस नहीं हुआ।

मेरी दृष्टि में सर्वज्ञता और वीतरागता – ये दोनों बातें जैनदर्शन की मूल बातें हैं, मूल आधार हैं, रीढ़ की हड्डी हैं। इसीप्रकार एक द्रव्य का कर्त्ता-धर्त्ता दूसरे द्रव्य को मानना भी महान भूल है।

आगे की पंक्तियों में शास्त्र का स्वरूप स्पष्ट किया गया है –

भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।

उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म–रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।

मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।

राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ–कर्म कमाते सुख होगा, बस अबतक ऐसा माना था।।

पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग–भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।

वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है।।

''रागभाव में धर्म मानना जिनमत में मिथ्यात्व कहा'' – इतनी बड़ी बात इतनी छोटी उम्र में दृढ़ता के साथ लिख देना – साधारण बात नहीं है।

जिनवाणी के स्वरूप में भी साफ–साफ लिख दिया गया है कि वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है।

इसके बाद उस छोटी उम्र में भी बहुत ही मर्यादापूर्वक गुरु का स्वरूप स्पष्ट किया गया है; जो इसप्रकार है –

उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।

दिन–रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।

निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी–ध्यानी–समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।

चलते-फिरते सिद्धों-से गुरु-चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।

अंत में तो गुरुओं को चलते-फिरते सिद्धों के समान बताया गया है।

सम्पूर्ण समाज ने इन पूजनों को जिस श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है और इनका उपयोग सच्चे दिल से सारे देश-विदेश में हो रहा है; वह अपने-आप में अद्भुत है, चित्त को प्रसन्न करने वाला है।

इस पूजन के माध्यम से जैनतत्त्वज्ञान की मूल बातें सहजभाव से ही जन-जन की जबान पर चढ़ गयी हैं। यह छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है।

उस समय उदासीन आश्रम, तुकोगंज, इन्दौर में कुछ ब्रह्मचारी रहते थे। वे सभी करणानुयोग के विशेष विद्वान थे, अध्यात्म में भी रुचि रखते थे।

सोनगढ़ की परम्परा से भी परिचित थे। वे मुझे भी तब से ही पहिचानते थे, जब मैं पढ़ता था। वे सभी लगभग मेरे दादाजी की उम्र के थे, पर मुझसे साधर्मी वात्सल्यभाव रखते थे।

मैं सन् 1957 से 1965 तक 9 वर्ष 3 माह अशोकनगर जिला गुना में रहा था। उन सभी ब्रह्मचारियों को मेरा प्रवचन बहुत पसन्द था। इसकारण उनमें से अधिकांश ब्रह्मचारी लोग चौमासे में अशोकनगर आ जाते थे।

अशोकनगर में बहुत जैन समाज रहता था। प्रतिदिन के प्रवचन में प्रवचन सुनने के लिये बहुत लोग इकट्ठे होते थे। प्रवचन मैं ही करता था। चौमासे में वातावरण बहुत अच्छा रहता था।

उन ब्रह्मचारियों में से एक ब्रह्मचारी सरदारमलजी 'सच्चिदानन्द' भी थे। युगलजी और मेरे बाद एक पूजन उन्होंने भी लिखी थी, उसकी अचरी की पंक्तियाँ इसप्रकार थीं -

अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

इसमें लोगों को यह लगा कि इस पूजन को करने से एक साथ तीन पूजनें हो जाती हैं –

1. देव-शास्त्र-गुरु पूजन 2. सिद्ध पूजन
3. विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

बस फिर क्या था कि अधिकांश लोग इस पर ही टूट पड़े।

हमारे एक मित्र ने हमसे कहा कि ब्रह्मचारीजी ने तो आप दोनों को पछाड़ दिया। अब अधिकांश लोग उनकी लिखी पूजन ही करेंगे।

मैंने कहा – अच्छी बात है; करें, अवश्य करें। इसमें पछाड़ देने की बात कहाँ है? जब हम अखाड़े में उतरे ही नहीं तो पछाड़ने की बात कहाँ से आती है? जिसको जो पूजन करना है करे; पूजन तो हमारी-तुम्हारी नहीं; देव-शास्त्र-गुरु की ही होती है। पूज्य तो वे ही हैं; हम-तुम तो पुजारी हैं।

अरे, भाई! प्रत्येक देव-शास्त्र-गुरु पूजन में सिद्ध भगवान और विद्यमान बीस तीर्थंकर, जो अभी अरहन्त अवस्था में हैं; वे भी आ जाते हैं; क्योंकि अरहन्त-सिद्ध देव ही तो हैं। पंच परमेष्ठियों में अरहन्त और सिद्ध देव हैं और आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु हैं।

देव और उनकी वाणी के अनुसार लिखी गुरुओं की वाणी, जिनवाणी शास्त्र हैं।

इतनी साधारण-सी बात हमारी समझ में नहीं आती और कहने लगते हैं कि उसमें तीन पूजनें आ गईं।

पूजन पाँच प्रकार की होती हैं –

1. नित्यमह (नित्यनियम) पूजन 2. आष्टाह्निक पूजन

3. चतुर्मुख (सर्वतोभद्र) पूजन 4. कल्पद्रुम पूजन

5. ऐन्द्रध्वज पूजन।[1]

जो पूजन नियम से प्रतिदिन की जाने योग्य हो, उसे नित्य-नियम पूजन कहते हैं। देव-शास्त्र-गुरु नित्य-नियम पूजन है; क्योंकि उसमें वे सब आ जाते हैं, जिनकी पूजन प्रतिदिन नियम से की जानी चाहिये।

नव देवों में पंच परमेष्ठी के साथ जिनबिंब, जिनमन्दिर, जिनवाणी और जिनधर्म भी आते हैं और उनको भी पूज्य माना जाता है। अत: देव-शास्त्र-गुरु पूजन के साथ इन्हें भी अर्घ्य चढ़ाया जाता है, इनकी भी पूजन की जाती है। इनमें अकृत्रिम और कृत्रिम जिनबिंब, जिनमन्दिर, जिनवाणी और जिनधर्म की भी पूजन की जाती है। अत: नित्य-नियम पूजन करने में अलग से सिद्ध भगवान और विद्यमान बीस तीर्थंकर अरहन्तों की पूजन करना आवश्यक नहीं है।

जो इनकी पूजन भी प्रतिदिन पृथक् से की जानी आवश्यक समझते हैं; वे यह नहीं जानते हैं कि देव-शास्त्र-गुरु पूजन, अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ्य और अन्त में महाऽर्घ्य देने में सब आ जाते हैं। ●

विधानों के माध्यम से तत्त्वप्रचार

इसी बीच राजमलजी पवैया ने भी बहुत-सी पूजनें और विधान लिखे। वे भी एकदम सहज और सरल होने से खूब किये जाते हैं। उनमें अधिकांश में अकृत्रिम जिनबिंब और जिनचैत्यालयों की पूजनें होने से भूगोल की मुख्यता होती है और वे जिन-बिंब और जिन-चैत्यालय कहाँ हैं - यह बताने में, लोकेट करने में ही छन्द पूरा हो जाता है। अत: कोई विशेष बात कहने को अर्घ्यों के छन्दों में अवकाश नहीं रहता; पर इनके करने से सम्पूर्ण समाज को जैन-भूगोल का साधारण-सा परिचय हो जाता है।

1. सागारधर्मामृत, श्लोक -18

बाद में समयसार आदि ग्रन्थों के विधान भी होने लगे।

समयसारादि ग्रन्थों की प्राकृत गाथाओं और संस्कृत छन्दों के सरल-सुबोध भाषा में पद्यानुवाद करके उन्हें अर्घ्य चढ़ाये गये तो भाव सहित उन गाथाओं और छन्दों का पाठ होने लगा; जो अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

बहुत प्रसन्नता की बात है कि आजकल गाँव-गाँव में वर्षभर लगातार विधान के रूप में समयसार आदि ग्रन्थों का पाठ होता रहता है।

इसमें मैंने भी अपना योगदान दिया और समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, योगसार, द्रव्यसंग्रह आदि ग्रन्थों पर विधान बना दिये। तो इन सबका पठन-पाठन और सहज सुलभ हो गया। जयमालाओं में संक्षेप में ग्रन्थ का सार भी प्रस्तुत कर दिया।

इसप्रकार इस युग में अध्यात्म के प्रचार-प्रसार में पूजन-विधानों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान हो गया।

जिन लोगों को हमारा यह प्रचार-प्रसार पसंद नहीं है; वे लोग इनका विरोध करते हुए कहते हैं -

''क्या शास्त्रों के भी पूजन-विधान होते हैं?''

क्यों नहीं होते? होते हैं, क्या हम जिनवाणी की पूजन नहीं करते? जब जिनवाणी की पूजन करते हैं तो ये शास्त्र भी तो जिनवाणी ही हैं।

पण्डित टोडरमलजी ने गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की टीका सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका लिखकर उसकी पूजन की थी। उन्होंने गोम्मटसार पूजन भी लिखी थी।

जैनदर्शन में तो देव और गुरुओं के समान उनकी वाणी जिनवाणी (शास्त्र) भी पूज्य हैं। हमने तो जिनवाणी को देव और गुरुओं के मध्य में रखा है। हम तो ऐसा ही लिखते-बोलते हैं - **''देव-शास्त्र-गुरु''**। ●

चौथा अध्याय

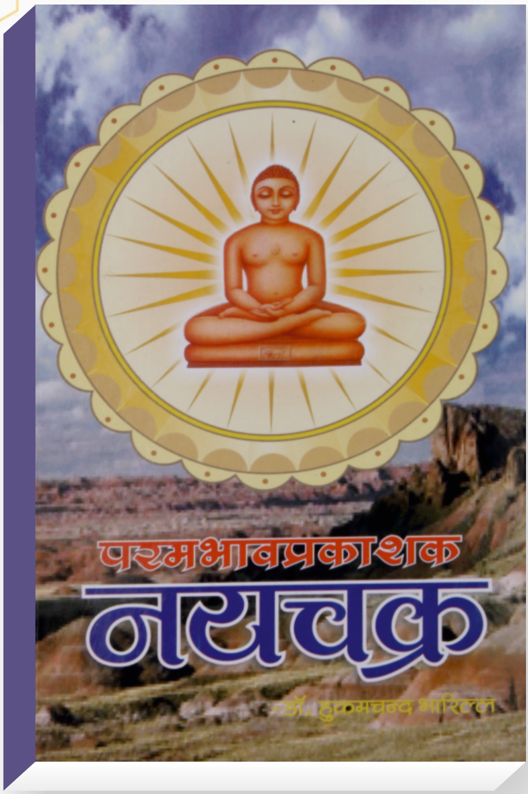

निश्चय-व्यवहार

आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्वारा की गई आध्यात्मिक क्रान्ति के युग के बीच में एक ऐसा समय आया कि जब गाँव-गाँव में निश्चय-व्यवहार के नाम से पार्टियाँ बन गईं थीं और उनके अलग-अलग मन्दिर बनने लगे थे। जब उन पार्टियों के कारणों का अध्ययन किया गया तो पता लगा कि इसका मूल कारण नयों सम्बन्धी अज्ञान ही है।

सन् 1979 ई. श्रावण मास में सोनगढ़ में लगने वाले शिविर में मुझे उत्तम कक्षा लेने का अवसर मिला। पूज्य गुरुदेवश्री खुद स्वयं भी उस कक्षा में बैठते थे। श्री रामजीभाई, श्री खीमचन्दभाई, श्री बाबूभाई, श्री हिम्मतभाई आदि सभी बड़े पण्डित भी उस कक्षा में बैठते थे और मैंने वह कक्षा माइल्लधवल के द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र के आधार पर ली थी। यद्यपि मैं इस महान कार्य को अपना महा सौभाग्य समझ रहा था, बहुत प्रसन्न था; तथापि गुरुदेवश्री और लगभग सभी बड़े विद्वानों की उपस्थिति में कक्षा लेना साधारण काम न था।

निश्चय-व्यवहार

आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्वारा की गई आध्यात्मिक क्रान्ति के युग के बीच में एक ऐसा समय आया कि जब गाँव-गाँव में निश्चय-व्यवहार के नाम से पार्टियाँ बन गईं थीं। निश्चयपार्टी और व्यवहारपार्टी के अलग-अलग ग्रुप बन गये थे और उनके अलग-अलग मन्दिर बनने लगे थे।

जब उन पार्टियों के कारणों का अध्ययन किया गया तो पता लगा कि इसका मूल कारण नयों सम्बन्धी अज्ञान ही है। सारी समाज तो नयज्ञान से अपरिचित थी ही; मुमुक्षुसमाज भी नयों के नाम पर बस उतना ही जानती थी, जितना मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अध्याय में निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी, उभयाभासी और सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि के प्रकरण में आया है।

विगत दो हजार वर्षों में नयों पर जो लिखा गया है और जो सम्पूर्ण जिनागम में यत्र-तत्र बिखरा हुआ है; उसका गहराई से अध्ययन कर नयों पर एक ऐसा ग्रन्थ लिखने का भाव आया कि जिसके अध्ययन से सबका सहज समाधान हो जाए।

यह काम मैं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की उपस्थिति में कर लेना चाहता था।

आत्मधर्म के संपादकीय के रूप में मैंने अप्रैल, 1980 से '**जिनवरस्य नयचक्रम्**' नाम से एक लेखमाला आरम्भ की।

इसके एक वर्ष पहले सन् 1979 ई. श्रावण मास में सोनगढ़ में लगने वाले शिविर में मुझे 'उत्तम कक्षा' लेने का अवसर मिला। इस कक्षा को पहले रामजीभाई लिया करते थे, जो तब अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण सम्भव नहीं था। एक वर्ष पहले यह कक्षा आदरणीय लालचन्दभाई ने ली थी; पर अब गुरुदेवश्री की इच्छानुसार यह कक्षा मुझे लेनी थी। काम कठिन तो अवश्य था; पर गुरुदेवश्री की आज्ञा को टालने की बात मैं सोच भी नहीं सकता था।

पूज्य गुरुदेवश्री खुद स्वयं भी उस कक्षा में बैठते थे। श्री रामजीभाई, श्री खीमचन्दभाई, श्री बाबूभाई, श्री हिम्मतभाई आदि सभी बड़े पण्डित भी उस कक्षा में बैठते थे और मैंने वह कक्षा माइल्लधवल के द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र के आधार पर ली थी।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित सभी नयचक्र बुला लिये गये थे। सबके हाथ में पुस्तक दी गई थी।

यद्यपि मैं इस महान कार्य को अपना महासौभाग्य समझ रहा था, बहुत प्रसन्न था; तथापि गुरुदेवश्री और लगभग सभी बड़े विद्वानों की उपस्थिति में कक्षा लेना साधारण काम न था।

तबतक मैं नयचक्र पर 10-10 पेज के सात संपादकीय लिख चुका था। गुरुदेवश्री की छत्रछाया में लगने वाली वह कक्षा बहुत ही सफल रही और पूज्य गुरुदेवश्री तथा सभी बुजुर्ग विद्वानों का भरपूर आशीर्वाद मुझे प्राप्त हुआ।

गुरुदेवश्री तो लगभग सवा साल के भीतर ही चले गये; पर मेरा वह 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' लिखा जाता रहा। उसने एक बहुत बड़ा आकार ले लिया, लगभग 500 पेज का हो गया; उसने अपने भीतर सबकुछ नहीं तो, नयों संबंधी बहुत कुछ विषय समाहित कर लिये हैं।

आज यह परमभावप्रकाशक नयचक्र वर्तमान में चलने वाले सभी जैन महाविद्यालयों में पढ़ाया जाता है। अपने विद्यार्थी विद्वानों में अधिकांश इसके विशेषज्ञ विद्वान हैं। जिनमें पण्डित अभयकुमारजी, डॉ. संजीवजी गोधा और डॉ. शान्तिकुमारजी पाटील आदि प्रमुख हैं।

समाज में नयों संबंधी जो भी विवाद था, वह अब पूरी तरह समाप्त हो गया है।

उक्त कृति के संदर्भ में वयोवृद्ध व्रती विद्वान ब्र. पण्डित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी वाले लिखते हैं –

आचार्य अमृतचन्द्र ने नयचक्र को 'अत्यन्तनिशितधारम्' कहा है। वर्तमान युग में निश्चय–व्यवहारनय पर चर्चित चर्चा अकुशल हाथों में पड़ गई है; अतः समाज का अंग छिन्न–भिन्न हो गया है। ऐसे दुर्दिनों में आवश्यकता थी कि उस जिनवर के नयचक्र को चलाने का शिक्षण उसके संचालकों को दिया जाये। डॉ. भारिल्ल की यह पुस्तक नयचक्र को चलाने की प्रशिक्षण पुस्तिका है।

यह पुस्तिका नय संबंधी विषयों का तो स्पष्टीकरण करती ही है, पर शंकाशील या गलत उपयोग करनेवाले सज्जनों की शंकाओं का निराकरण करते हुए उन्हें नयों के प्रयोग करने की पद्धति का शिक्षण भी देती है।

जब कोई नयी बीमारी फैलती है तो उसकी औषधि का आविष्कार भी उस युग में किसी विशिष्ट व्यक्ति के द्वारा अवश्य होता है। इस सनातन नियमानुसार वर्तमान जैनसमाज में व्याप्त रोग की यह औषधि है। व्यवहारनय की उपयोगिता तथा उसकी हेयता पर भी विस्तार से इसमें प्रकाश डाला गया है।

डॉ. भारिल्ल कलम के धनी हैं, उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने इस कृति में दर्शन दिये हैं। उनको मेरे अनेक धन्यवाद तथा शुभाशीर्वाद हैं।

वे ठीक दिशा में बढ़े हैं और बढ़ते जायें – यही भावना है। विद्वानों की परम्परा की समाप्ति के दुर्दिनों में उनका उदय भविष्य की उज्ज्वलता की आशा दिलाता है।

उक्त कृति के संदर्भ में ही सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी, वाराणसी वाले लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित कृति में विषय को बहुत सरल तथा स्पष्टता से समझाया गया है। सब कथन साधार और सप्रमाण हैं। इसे पढ़कर साधारण पाठक और छात्रगण भी लाभान्वित हो सकेंगे।

इससे एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हुई है। सोनगढ़ पक्ष के आलोचकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

उक्त कृति के संदर्भ में ही पण्डित श्री बाबूभाई मेहता लिखते हैं–
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' कृति को यदि मध्यस्थ होकर पक्षपात छोड़कर पढ़ें तो यह विवादरूप अज्ञान मिटाने में अवश्य उपकारी होगी – ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ. भारिल्ल ने अनेक अध्यात्म व आगम ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन कर तथा पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी का प्रत्यक्ष–परिचय व दृष्टि पाकर, जिनागम में प्रतिपादित नयों के रहस्यों को सरल, सुबोध, सुगम, हृदयंगम शैली से सोदाहरण खोलकर व इस ग्रन्थ में एक साथ रखकर अध्यात्म जगत के तत्त्वजिज्ञासु मुमुक्षुसमाज पर बहुत बड़ा उपकार किया है।

नयों का विषय सामान्यतः कठिन और पाण्डित्यपूर्ण होने पर भी इस प्रथम प्रयास से वह जन–जन का विषय बन गया है और बनेगा; क्योंकि यह देशभाषा में इसप्रकार प्रस्तुत किया गया है कि आबाल–गोपाल सभी समझ सकें।

इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें आत्महित के लक्ष्य से

भेदविज्ञान और वीतरागदशा होने के कारणभूत सर्वनयों के कथन करने का तात्पर्य है – ऐसा निर्देश जगह–जगह पर किया गया है।

आत्महित की भावनावालों को यह कृति पठनीय एवं मननीय है।

बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल', कोटा लिखते हैं–

विस्तृत अध्ययन, कठिन परिश्रम, गहरी गवेषणा एवं पैनी प्रज्ञा का प्रसव डॉ. भारिल्ल की अनुपम कृति; नय के चक्र में फँसकर, उससे साफ बच निकलने के लिए काफी पर्याप्त है।

डॉ. चन्दूभाई टी. कामदार, राजकोट लिखते हैं–

जिसप्रकार चक्रवर्ती चक्ररत्न के द्वारा प्रतिपक्षियों को पराजित करके छह खण्डों को जीतता है; उसीप्रकार डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने आत्मा को ध्येय बनाकर विविध प्रकार के नयों का सर्वाङ्गीण विवेचन कर इस 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रंथ अत्यन्त विशद और स्पष्ट है, इसमें अनेक जगह जिनेन्द्र कथित शास्त्रों का आधार दिया गया है।

इससे यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना के पूर्व लेखक ने कितनी गहराई से शास्त्रों का अध्ययन किया है, तभी तो ऐसी सुन्दर कृति तैयार हो सकी है। तदर्थ लेखक को अनेकानेक धन्यवाद है।

इस 'नयचक्र' का जो कोई तत्त्वपिपासु आत्मा सुरुचिपूर्वक अध्ययन करके परिणमन करेंगे, उनकी मोहरूपी बलवान सेना का अवश्य पराभव होगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि नयों के सन्दर्भ में यह कृति निश्चितरूप से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रथमानुयोग के अनेक ग्रन्थों के टीकाकार और विद्वत परिषद् के अनेक वर्षों तक महामंत्री व अध्यक्ष रहने वाले दिग्गज विद्वान डॉ. पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर लिखते हैं –

श्री जिनेन्द्रदेव का नयचक्र वस्तुतः दुरूह है, फिर भी यदि दृष्टि उज्ज्वल है तो उसे सहज ही समझा जा सकता है। पदार्थ जब द्रव्य-पर्यायात्मक अथवा सामान्यविशेषात्मक है, तब उसे कहने के लिए मूलरूप में दो नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक स्वीकृत करना आवश्यक है। द्रव्य और पर्याय की विविधरूपता की ओर जब देखते हैं, तब इन्हीं दो नयों के अनेक भेद प्रस्फुटित होने लगते हैं। इन सब नयों को सुलेखक एवं सुवक्ता डॉ. भारिल्लजी ने सरल भाषा में प्रगट किया है। पुस्तक की साज-सज्जा और छपाई आकर्षक है। पुस्तक सर्वत्र समादृत होगी।

डॉ. राजारामजी जैन, एम.ए., पीएच.डी., आरा लिखते हैं –

डॉ. भारिल्लजी की कृति जिनवरस्य नयचक्रम् को आद्योपान्त पढ़कर मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तत्त्वज्ञान के लिए नयज्ञान उसीप्रकार अनिवार्य है, जिसप्रकार भवन-निर्माण के लिए ईंट-पत्थर। मेरे विचार से जैनदर्शन का नय प्रकरण दार्शनिक भाषा-शैली में लिखे जाने के कारण अभी तक प्रायः विद्वद्भोग्य ही बना रहा था, किन्तु अब प्रस्तुत ग्रंथ के सरल भाषा, सरस शैली तथा दैनिक अनुभवों से समर्थित होने के कारण सर्वोपयोगी बन गया है।

प्रश्नोत्तरी शैली के माध्यम से लेखक ने नयों के विभिन्न पक्षों पर विविध दृष्टिकोणों से प्रकाश डालने का अच्छा प्रयास किया है। सचमुच ही गूढ़ विषय को लोकप्रिय बनाने का यह सफल एवं स्तुत्य प्रयोग है। हृदयाकर्षक लेखन एवं नयनाभिराम प्रकाशन के लिए लेखक एवं प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

डॉ. फूलचन्द प्रेमी, अध्यक्ष जैनदर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी लिखते हैं –

सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों के परिप्रेक्ष्य में जैनदर्शन की स्वतन्त्र व मौलिक देन नय जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर बिखरी हुई सामग्री को इकट्ठा

कर मौलिकरूप देने का यह प्रथम सफल प्रयास है। इस पुस्तक के माध्यम से अनेक शोध-खोज, तदनुसार विस्तृत अध्ययन के अनेक द्वार उद्घाटित होंगे – ऐसी आशा है।

प्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचंदजी नाहटा, बीकानेर लिखते हैं –

नय जैनधर्म की मौलिक विशेषता है। इसके सम्बन्ध में जितना गहन व विशाल साहित्य है, उसे पढ़ने पर भी पूरा बोध नहीं हो पाता। निश्चय एवं व्यवहार को लेकर तो बड़ा विवाद भी है।

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल एक सुलझे हुए विचारक एवं अध्ययनशील विद्वान हैं। उनके द्वारा लिखित यह कृति जिनवरस्य नयचक्रम् नया प्रकाश डालती है। मुझे आशा है कि यह कई भ्रमों का निराकरण कर सकेगी। मैं उनके इस मूल्यवान ग्रन्थ का हृदय से स्वागत करता हूँ। जिज्ञासुओं से अनुरोध है कि इसे भली-भाँति पढ़कर लाभ उठावें। इसका अधिकाधिक प्रचार वांछनीय है।

श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन, प्राचार्य, जैन इन्टर कॉलेज, फिरोजाबाद (उ.प्र.) लिखते हैं –

जिनवरस्य नयचक्रम् जैनदर्शन के जिज्ञासुओं के लिए एक उपयोगी ग्रन्थ है। विद्वान् लेखक ने सरस और सरल शैली में नयों की आवश्यकता और प्रामाणिकता तथा उनके स्वरूप और भेद-प्रभेदों पर सुन्दर प्रकाश डाला है और यह सिद्ध कर दिया है कि जिनेन्द्र भगवान का नयचक्र दुःसाध्य भले ही हो, असाध्य नहीं है। दिन के प्रकाश की तरह यह भी स्पष्ट हुआ है कि नयचक्र को समझे बिना संसार के दुःखों से बचने का कोई उपाय नहीं है।

डॉ. भारिल्लजी की इस पुस्तक को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि पाठक मानो किसी कुशल शिक्षक की कक्षा में बैठा है और विवेच्य विषय उसके सामने इस तरह प्रस्तुत किया जा रहा है कि उसका कोई

भी पहलू बुद्धिगम्य होने से छूट नहीं पा रहा है। लेखन कला और शैली की ऐसी विशेषता सबको यों इतनी आसानी से प्राप्त नहीं हो पाती, उसके लिए भी गहन अभ्यास और साधना अपेक्षित है। घिसे-पिटे पौराणिक या शास्त्रीय दृष्टान्तों की जगह व्यावहारिक और दैनिक जीवन में जाने-बूझे कुछ नये और मौलिक उदाहरण प्रस्तुत कर लेखक ने विषय को बालादपि ग्राह्य बना दिया है। शतरंज के खिलाड़ी, बादाम, साबुन आदि के उदाहरणों से यह बात प्रमाणित होती है।

विद्वत्-समाज में झगड़ा नयों को लेकर नहीं है। किसी नय-विशेष के विवेचन के समय उसके पीछे निहित अभिप्राय के स्पष्ट न हो पाने की वजह से ही उलझनें खड़ी होती हैं। लोकप्रिय वक्ता और शिक्षक श्री भारिल्लजी ने समयसारादि ग्रन्थों के आधार पर व्यवहारनय की कथंचित् प्रयोजनशीलता और आप्त-मीमांसा आदि के आधार पर, सापेक्ष नय-कथन के सिद्धान्त का स्पष्ट और युक्तिसंगत विवेचन कर, नय विवाद को सुलझाने की भावना से ही यह पुस्तक लिखी है। एक सूझ-बूझभरे विवाद को सुलझाने की भावना से ही यह पुस्तक लिखी है। यह एक सूझ-बूझभरा सम-सामयिक उपयोगी कदम है। श्रम की सार्थकता के लिए लेखक को हमारी भूरिशः बधाइयाँ। आशा है, दोनों पक्षों के स्वाध्यायी सज्जन इससे लाभ उठाते हुए अपने दैनन्दिन जीवन-व्यवहार में भी दोनों नयों के सन्तुलन को कोई आकार देने के लिए सदैव सचेष्ट रहेंगे।

डॉ. भागचन्द्रजी भास्कर, अध्यक्ष : पाली-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय लिखते हैं –

ग्रंथ को आद्योपान्त पढ़ने के बाद यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि डॉ. भारिल्ल ने इसमें निश्चय-व्यवहार नयों का सांगोपांग विवेचन बड़ी तलस्पर्शिता व गंभीरता के साथ किया है। डॉ. भारिल्ल इसके लिए बधाई के पात्र हैं। आध्यात्मिक स्वाध्यायी पिपासुओं के लिए यह ग्रंथ निश्चित ही संग्रहनीय है।

पं. उदयचन्द्रजी जैन, अध्यक्ष : दर्शन विभाग, विश्वविद्यालय, वाराणसी लिखते हैं –

जिनवरस्य नयचक्रम् पुस्तक का सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन कर हृदयकमल प्रफुल्लित हो गया। डॉ. भारिल्ल जैनदर्शन और जिनागम के मर्मज्ञ विद्वान हैं। इन्होंने जैनागमरूपी समुद्र का मन्थन करके नयरूपी रत्नों को निकाला है और इसे सर्वसाधारण तक पहुँचाया है। प्रत्येक कथन नयसापेक्ष होता है और इसे न समझने के कारण ही अनेक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं।

लेखक ने बड़े ही सरल ढंग से नयों का सप्रमाण और सोदाहरण विवेचन करके एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति की है। नय-विषयक सम्पूर्ण जानकारी को एक ही स्थान में उपलब्ध करा देना यह एक महती उपलब्धि है। इस पुस्तक में नय का स्वरूप, नय के भेद-प्रभेदों आदि का सांगोपांग विवेचन किया गया है। डॉ. साहब एक सिद्धहस्त लेखक हैं और इनकी शैली सरल, सुबोध और रोचक है। साधारण व्यक्ति भी इनकी रचनाओं को आसानी से हृदयंगम कर सकता है।

प्रश्नोत्तर शैली के कारण इस कृति का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। जिनवर द्वारा प्रतिपादित नयचक्र के प्रयोग करने में दक्षता प्राप्त करने के लिए यह एक अनूठी रचना है। यद्यपि इस पुस्तक के नाम को देखकर या सुनकर ऐसा भ्रम होता है कि यह रचना संस्कृत में है, फिर भी पुस्तक का नामकरण यथार्थ और मनमोहक है। इसका कारण भारिल्लजी ने अपनी बात में लिख ही दिया है।

वयोवृद्ध विद्वान ब्र. मुन्नालालजी रांधेलीय, सागर लिखते हैं –

वस्तु व व्यक्ति दोनों की शोभा, प्रतिष्ठा व उपयोगिता उसमें विद्यमान अलौकिक गुणों के आधार पर होती है। सत्य मोक्षमार्ग एवं जिनशासन की महती प्रभावना में आचार्यकल्प पं. श्री टोडरमलजी के

बाद आदरणीय पूज्य श्री कानजी स्वामी का योगदान स्मरणीय है। उनकी ही छटा के दर्शन आज की पीढ़ी के विद्वानों में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित पुस्तकों में हो रहे हैं, जो भविष्य के विद्वानों का पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी। डॉ. भारिल्ल का पांडित्य शब्दार्थों तक सीमित नहीं है, उसमें भावार्थ को सरल, सुबोध भाषा में व्यक्त करने की सामर्थ्य भी है। उनकी नवीनतम कृति 'जिनवरस्य नयचक्रम्' बेला-चमेली जैसे सुगन्धित पुष्पों के समान है। अतएव आदरणीय एवं संग्रहणीय है।

विद्वद्वर्य पं. श्री खीमचन्दभाई जेठालाल सेठ, सोनगढ़ लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की यह कृति 'जिनवरस्य नयचक्रम्' जिज्ञासु आत्माओं के लिए आत्महितपोषक, सत्पथप्रदर्शक, ज्ञानवर्धक, प्रेरणादायक स्रोत के रूप में है, क्योंकि यह जिनेन्द्रदेव की सकल जगतहितकारिणी, मोहहारिणी, भवाब्धितारिणी, मोक्षचारिणी वाणी (दिव्यध्वनि) के रहस्य का उद्घाटन करनेवाली है। इस उत्तमकृति में डॉ. भारिल्लजी ने जिनागम का अविरत मंथन करके जो नवनीत निकाला है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इस नयचक्र का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर और अपेक्षा समझकर जो रसपान करेंगे, उनका 'भवचक्र' मिट जायेगा तथा जो अन्तर में परिणमन करेंगे, वे 'भवचक्र' का अभाव करके अल्पभव में भवातीत स्थान को अवश्य प्राप्त करेंगे।

सिद्धान्ताचार्य पण्डित फूलचन्दजी, वाराणसी लिखते हैं –

'जिनवरस्य नयचक्रम्' ग्रंथ पढ़ा। यह कार्य जितना अधिक सराहनीय है, उतना ही अधिक उपयोगी भी बन पड़ा है। नयज्ञान के अभाव में नय-विषयक पुस्तकें लिखकर जो विडम्बना की गई है; उसके परिहार करने में इस पुस्तक से पर्याप्त सहायता मिलेगी। इस उपक्रम का मैं स्वागत करता हूँ। ●

अधूरी उल्टी आत्मकथा

पाँचवाँ अध्याय

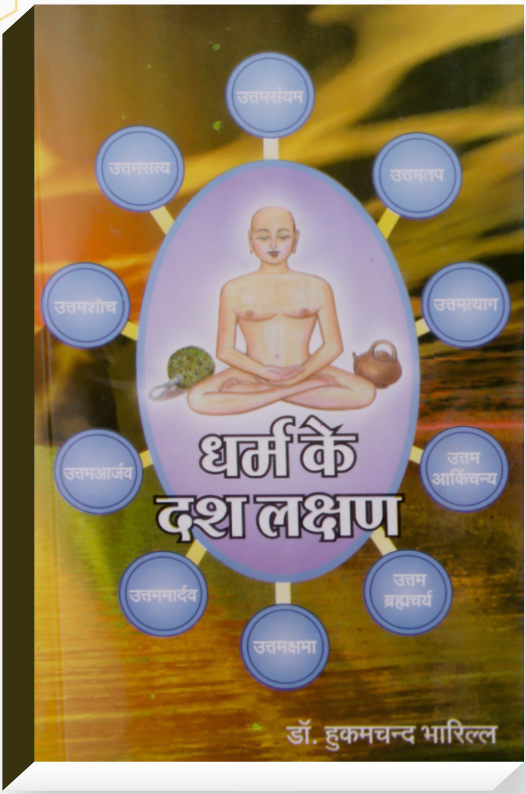

धर्म के दशलक्षण

धर्म के दशलक्षण विषय पर लिखे गए लम्बे-लम्बे संपादकीयों ने समाज में तहलका मचा दिया। गुरुदेवश्री के हृदय को भी जीत लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने जब इसे आद्योपान्त पढ़ा तो वे इतने गद्गद हो गये कि लगातार दो माह तक इस कृति की प्रशंसा करते रहे, लोगों को इसके अध्ययन की प्रेरणा देते रहे।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की यह महत्त्वपूर्ण रचना न केवल अध्यात्म-दृष्टि वालों के लिए ही उपयोगी है, बल्कि व्यवहार की बुद्धि रखने वाले भी इसे पढ़कर व्यवहार की सच्चाई को भी स्वयं समझ सकते हैं। दशलक्षणी पर्व में व्याख्यान देने वाले पण्डितों के लिए तो इस पुस्तक का एक बार वाचन कर लेना मैं अनिवार्य समझता हूँ।

धर्म के दशलक्षण

इसी बीच मैंने धर्म के दशलक्षणों पर संपादकीय लिखे।

आत्मधर्म में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन और उनसे किये गये प्रश्नोत्तर ही आते थे; अन्य विद्वानों के लेख नहीं आते थे। एक प्रकार से वह आत्मधर्म गुरुदेवश्री के प्रवचनों को जन-जन तक पहुँचाने के लिये ही था; पर मुझे गुरुदेवश्री की कृपा से उसमें अपने संपादकीय लिखने का अवसर भी मिला।

गुरुदेवश्री से लिये गये इन्टरव्यू के अतिरिक्त मैंने आध्यात्मिक विषयों पर ही संपादकीय लिखे।

'धर्म के दशलक्षण' विषय पर लिखे गए लम्बे-लम्बे संपादकीयों ने समाज में तहलका मचा दिया। गुरुदेवश्री के हृदय को भी जीत लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने जब इसे आद्योपान्त पढ़ा तो वे इतने गद्गद हो गये कि लगातार दो माह तक इस कृति की प्रशंसा करते रहे, लोगों को इसके अध्ययन की प्रेरणा देते रहे।

इस कृति के सन्दर्भ में कहे गये उनके कतिपय वाक्य इसप्रकार हैं -

गजब किया है, लिखने व कहने की पद्धति गजब है। 44 वर्ष की छोटी उम्र; पर गजब लिखा है। त्यागधर्म और संयमधर्म की व्याख्या में तो गजब किया है। दान व त्याग में क्या अन्तर है? इसका विस्तृत खुलासा किया है। इतना सुन्दर लिखा है कि पढ़ते हुए पुस्तक छोड़ने का मन ही नहीं होता।

इसकी गहराई की खबर तो उसे पड़ेगी, जो बाँचने के साथ विचार भी करेगा, बस यों ही बाँच जाने से कुछ हाथ नहीं लगेगा।

हुकमचन्दजी का क्षयोपशम बहुत है और शैली ऐसी है कि बात पढ़ने वाले के गले उतर जाती है। गम्भीर प्रश्नों के अत्यन्त सरल भाषा में उत्तर दिये हैं।

जैसा स्पष्टीकरण पण्डितजी ने किया है, वैसा तो मैं भी नहीं कर सकता हूँ। पण्डित जगन्मोहनलालजी ने जो यह लिखा है कि हुकमचन्दजी को सरस्वती का वरदान प्राप्त है, वह एकदम सही है।

जिस कृति के बारे में गुरुदेवश्री इसप्रकार के विचार व्यक्त करते हों, उसके बारे में हम विशेष क्या कहें ?

पण्डित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य, वाराणसी लिखते हैं–

श्री भारिल्लजी की विचार-शैली और लेखन-शैली दोनों ही हृदयग्राही हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, दशधर्मों पर इतना सुन्दर आधुनिक ढंग का विवेचन इससे पहिले मेरी दृष्टि में नहीं आया। इससे एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। दशलक्षण पर्व में प्रायः नवीन प्रवक्ता इसप्रकार की पुस्तक की खोज में रहते थे। ब्रह्मचर्य पर अन्तिम लेख मैंने पिछले आत्मधर्म में पढ़ा था, उसमें संसार में विषबेल नारी का अच्छा विश्लेषण किया है।

पण्डित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी लिखते हैं –

दशधर्मों पर पण्डितजी (डॉ. भारिल्ल) के विवेचन, मैंने हिन्दी आत्मधर्म में भी पढ़े थे। मुझे उनको पढ़कर उसी समय बहुत प्रसन्नता का अनुभव हुआ था। नई पीढ़ी के विद्वानों में डॉ. भारिल्ल अग्रगण्य हैं। इनकी लेखनी को सरस्वती का वरदान है – ऐसा लगता है। डॉ. साहब ने साहित्य के क्षेत्र में इस पुस्तक पर सचमुच डॉक्टरी का प्रयोग किया है। दशधर्मों की औषधि का प्रयोग, दशविकारों की बीमारी का पूरा

ऑपरेशन कर बहुत सुन्दरता से किया है। इतना विशद सांगोपाङ्ग वर्णन आधुनिक भाषा व आधुनिक शैली में अन्यत्र दिखाई नहीं देता। पुस्तक आज के युग में नये विद्वानों को दशधर्म का पाठ पढ़ाने को उत्तम है। भाषा प्रांजल है। एक बार शुरू करने पर पुस्तक छोड़ने को जी नहीं चाहता। विषय हृदय को छूता है। कई स्थल ऐसे हैं, जिनका अच्छा विश्लेषण किया गया है।

पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य, वाराणसी लिखते हैं –

जिसप्रकार आगम में द्रव्य के आत्मभूत लक्षण की दृष्टि से उसके दो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, उनके द्वारा एक ही वस्तु कही गई है; उसीप्रकार धर्म के आत्मभूतस्वरूप की दृष्टि से आगम में धर्म के दशलक्षण निबद्ध किये गये हैं। उनके द्वारा वीतराग-रत्नत्रयधर्मस्वरूप एक ही वस्तु कही गई है, उनमें अन्तर नहीं है। धर्म के दशलक्षण पुस्तक इसी तथ्य को हृदयंगम करने की दृष्टि से लिखी गई है। स्वाध्यायप्रेमियों को इस दृष्टि से इसका स्वाध्याय करना चाहिए।

इससे उन्हें धर्म के स्वरूप को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। आपके इस सफल प्रयास के लिए आप अभिनन्दन के पात्र हैं। वर्तमान काल में दशलक्षण पर्व को पर्युषण कहने की परिपाटी चल पड़ी है, किन्तु यह गलत परम्परा है। पर्व का सही नाम दशलक्षण पर्व है। आप अपनी साहित्य सेवा से समाज का इसीप्रकार मार्गदर्शन करते रहें।

ब्र. पं. मुन्नालालजी रांधेलीय, न्यायतीर्थ, सागर लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित पुस्तक धर्म के दशलक्षण की प्रशंसा पर्याप्त की जा रही है, वह योग्य है, उसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। वह प्रशंसा जड़ पुस्तक की नहीं है, अपितु उसके लेखक समाजमान्य चेतनज्ञान-धनी भारिल्लजी की है। नई पीढ़ी में पण्डितजी जैसे तलस्पर्शी तत्त्वज्ञ विद्वानों की अत्यन्त आवश्यकता है, खाली

पदवीधारियों की नहीं। यद्यपि पण्डितजी में और भी अनेक विशेषताएँ हैं, तथापि जो तत्काल आवश्यक है; वह तर्कणा और प्रतिभा का संगम है, जो सोने में सुगन्ध है; वह भारिल्लजी में है।

वास्तव में धर्म का स्वरूप और उसके दश अंगों का चित्रण आजकल की भाषा में और आजकल के ढंग (वैज्ञानिक विधि) में अतीव सुन्दर (मनोहारी) किया है, जिसका हम हार्दिक समर्थन करते हैं।

स्वस्तिश्री भट्टारक चारुकीर्ति, पण्डिताचार्य, मूडबिद्री लिखते हैं –

समाजमान्य विद्वद्वर्य डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'धर्म के दशलक्षण' देखकर परम हर्ष हुआ। इसमें कोई दो राय नहीं है कि डॉ. भारिल्लजी सिद्धहस्त लेखक हैं और प्रबुद्ध वक्ता हैं। उत्तमक्षमादि दशधर्मों का सूक्ष्म विश्लेषण सरल शैली में व्यक्त किया गया है। इस कृतित्व की सर्वोपरि विशिष्टता यह है कि इसमें दशधर्मों का तात्त्विक दृष्टि से सरस, सरल व सुबोध शैली में प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से दशधर्मों का विवेचन प्रायः अब तक देखने में नहीं आया है। दशधर्मों पर प्रस्तुत और भी जो कृतियाँ हैं, उनमें भी प्रायः तात्त्विक दृष्टि से विवेचन का पक्ष अगोचर ही रहा है। विद्वान लेखक ने उत्तमक्षमादि प्रत्येक धर्म पर तथ्यात्मक, रोचक व बहुत ही सुन्दर ढंग से सफल लेखनी चलाई है। नयनाभिराम मुद्रणादि से सम्पन्न प्रस्तुत 'धर्म के दशलक्षण' उपहार से पाठकों तथा समाज को सत्पथ का दिग्दर्शन तो होगा ही, साथ ही आत्मा के धर्म को पाने के लिए भी सम्यक् दिशा प्राप्त होगी।

पण्डित खीमचन्दभाई जेठालाल शेठ, सोनगढ़ लिखते हैं –

आत्मा की पर्युपासना करने का महान मंगलमय पर्व ही पर्यूषण है। दशलक्षण धर्म की आराधना मुख्यतया पूज्य मुनिराजों द्वारा होती है, उसका स्पष्ट निर्देशन डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित धर्म के दशलक्षण नामक पुस्तक में मिलता है। वे अभिनव दृष्टि से विचार करने

वाले हैं, सब लेखों में उनके व्यक्तित्व का प्रभाव आनन्द का अनुभव कराता है। इस पुस्तक में उन्होंने दशधर्मों का विवेचन सर्वजन-सम्मत शैली से किया है, वह अतीव प्रशंसनीय है और इसके लिए वे अभिनन्दन के पात्र हैं। उनके सभी लेख सर्वत्र-सर्वदा सबको धर्म-आराधना में अत्यन्त सहायक होंगे।

सिद्धान्तरत्न नन्हेलालजी न्याय-शास्त्री, राजाखेड़ा लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल ने बड़ी गहराई के साथ दशलक्षणों का अपूर्व विवेचन किया है। अभी तक इस विषय में ऐसा सांगोपांग विवेचन अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया है। डॉ. भारिल्ल ने अपने प्रतिभागत तर्क-वितर्क और प्रश्नोत्तर की शैली से पुस्तक को अत्यधिक उपयोगी बना दिया है। डॉ. भारिल्ल के विशुद्ध क्षयोपशम की जितनी तारीफ की जाए कम है। मेरी शुभकामना है कि भारिल्लजी का भविष्य इससे भी अधिक उज्ज्वल और उन्नतिशील बने।

डॉ. दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य, वाराणसी लिखते हैं –

इसमें आपने अपनी सहज, अनुभवपूर्ण और समीक्षात्मक शैली से उक्त दशधर्मों का विवेचन प्रस्तुत किया है। इसमें संदेह नहीं कि आपका प्रयत्न बहुत सफल हुआ है। कहीं-कहीं चुटकी भी ली है, पर वह चुटकी गलत नहीं है। ब्रह्मचर्य का जो चित्रण किया है, वह जी को लगता है और वह उचित प्रतीत होता है। मुझे आशा है आपकी सन्तुलित लेखनी द्वारा चारों अनुयोगों की उपयोगिता और महत्त्व पर भी एक ऐसी ही पुस्तक प्रस्तुत होगी। हार्दिक बधाई ! पुस्तक का प्रकाशन और साज-सज्जा भी उत्तम है।

श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर लिखते हैं –

आत्मधर्म में जब से दशलक्षणों सम्बन्धी भारिल्लजी की लेखमाला प्रकाशित होने लगी, मैं रुचिपूर्वक उसे पढ़ता रहा।

डॉ. भारिल्ल के मौलिक चिन्तन से प्रभावित भी हुआ। उन्होंने धर्म के दश लक्षणों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये हैं, अन्य कई बातें विचारोत्तेजक व मौलिक हैं। अब तक इन लक्षणों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा व लिखा जाता रहा है, पर मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करना सबके वश की बात नहीं है। डॉ. भारिल्ल में जो प्रतिभा और सूझ-बूझ है, उसका प्रतिफलन इस विवेचन में प्रगट हुआ है। आशा है इससे प्रेरणा प्राप्त कर अन्य विद्वान भी नया चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

डॉ. भारिल्ल ने जो प्रश्न उपस्थित किये हैं, वे बहुत ही विचारणीय व मननीय हैं। धर्म और अध्यात्म के सम्बन्ध में उनका चिन्तन और भी गहराई में जाए और वे मौलिक तथ्य प्रकाशित करते रहें, यही शुभकामना है। प्रस्तुत ग्रंथ का अधिकाधिक प्रचार वांछनीय है। प्रकाशन बहुत सुन्दर हुआ है और मूल्य भी उचित रखा गया है।

श्री अक्षय जैन, भूतपूर्व सम्पादक, नवभारत टाइम्स लिखते हैं –

पुस्तक बहुत उपयोगी और सामयिक है। सीधी-सादी भाषा में दश धर्मों का सुन्दर विवेचन डॉ. भारिल्ल ने किया है। मैं आशा करता हूँ कि इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार होगा, जिससे सामान्य-जन को लाभ पहुँचेगा।

पं. ज्ञानचन्दजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, गंजबासौदा लिखते हैं –

डॉ. भारिल्लजी जैन-जगत के बहुचर्चित, बहुप्रसिद्ध, उच्चकोटि के विद्वान हैं। विद्वत्ता के साथ-साथ आप प्रवर सुवक्ता, कुशल पत्रकार, ग्रन्थ निर्माता, सुकवि भी हैं। दशलक्षण धर्म पर अनेक मुनियों, विद्वानों एवं त्यागियों ने छोटे-बड़े ग्रन्थ एवं पुस्तकें लिखी हैं, पर उन सबमें डॉ. भारिल्लजी द्वारा लिखित धर्म के दशलक्षण ग्रन्थ सर्वोपरि है, इसमें आध्यात्मिक विद्या के आधार पर तात्त्विकी सैद्धान्तिक विवेचना की है।

भाषा प्रांजल, सरल, सुबोध एवं सुरुचिपूर्ण है। आप कोई चेप्टर लेकर बैठ जाइए, जब तक पूरा न पढ़ लेंगे, तब तक मन में अतृप्ति-सी बनी रहती है। इसी का नाम सत्-साहित्य है। आपकी यह सुन्दर, नूतन, मौलिक रचना पठनीय तो है ही, पर अनुभवन और मन्थन की भी वस्तु है।

डॉ. देवेन्द्रकुमारजी, प्रोफेसर, इन्दौर विश्वविद्यालय लिखते हैं –

ये लेख आत्मधर्म के सम्पादकीय में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते रहे हैं; परन्तु उनका एक जगह संकलन कर ट्रस्ट ने बढ़िया काम किया। इससे पाठकों को धर्म के विविध लक्षणों का मनन, एक साथ, एक-दूसरे के तारतम्य में करने का अवसर प्राप्त होगा। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि लेखों की भाषा इतनी सरल और सुबोध है कि उससे आम आदमी भी तत्त्व की तह तक पहुँच सकता है। डॉ. भारिल्ल ने परम्परागत शैली से हटकर धर्म के क्षमादि लक्षणों का सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इसलिए उसमें धार्मिक नीरसता के बजाय सहज मानवी स्पंदन है। विश्वास है कि यह पुस्तक लोगों को धर्म की अनुभूति की प्रेरणा देगी।

डॉ. भागचन्द्रजी जैन भास्कर, नागपुर विश्वविद्यालय लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल समाज के जाने-माने विद्वान व्याख्याता हैं, उनकी व्याख्यान किंवा प्रवचन शैली बड़ी लोकप्रिय हो गई है। वही शैली इस पुस्तक में आद्योपान्त दिखाई देती है। विषय और विवेचन गंभीर होते हुए भी सर्वसाधारण पाठक के लिए ग्राह्य बन गया है। अतः लेखक एवं प्रकाशक दोनों अभिनन्दनीय हैं।

डॉ. हरीन्द्रभूषणजी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल नई पीढ़ी के प्रबुद्ध, लगनशील एवं उच्चकोटि के विद्वान हैं। 'धर्म के दशलक्षण' उनकी अपने ढंग की एक सर्वथा नवीन कृति है। डॉ. भारिल्ल ने अपनी इस रचना में अत्यन्त सरल

भाषा में जैनधर्म के मौलिक दश आदर्शों का प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरणों के साथ सोदाहरण विवेचन किया है। दश धर्मों का ऐसा शास्त्रीय निरूपण अभी तक एकत्र अनुपलब्ध था। पर्युषण पर्व में व्याख्यान करने वालों को तो यह कृति अत्यन्त सहायक होगी।

डॉ. प्रेमसुमनजी, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल ने बड़ी रोचक शैली में धर्म के स्वरूप को स्पष्ट किया है। आध्यात्मिक रुचि वाले पाठकों के लिए इस पुस्तक में चिन्तन-मनन की भरपूर सामग्री है। मेरी ओर से डॉ. भारिल्ल को इस सुन्दर एवं सारगर्भित कृति के लिए बधाई।

डॉ. कस्तूरचन्दजी कासलीवाल, जयपुर (राज.) लिखते हैं –

दशधर्मों पर डॉ. भारिल्ल के लेखों को पुस्तकरूप में प्रकाशित करके बहुत अच्छा काम किया है। विद्वान् मनीषी ने अपनी सुबोध शैली में दशधर्मों पर सारगर्भित एवं मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनको पढ़कर प्रत्येक पाठक इन धर्मों के वास्तविक रहस्य को सरलता से जान सकता है तथा उन पर चिन्तन एवं मनन कर सकता है। पुस्तक की छपाई एवं गेट-अप दोनों ही नयनाभिराम हैं।

डॉ. ज्योतिप्रसादजी जैन, लखनऊ (उ. प्र.) लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल आध्यात्मिक शैली के प्रतिष्ठित सुचिन्तक, सुवक्ता, सुलेखक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने प्रसादगुण सम्पन्न शैली में धर्म के उत्तमक्षमादि दश पारम्परिक लक्षणों अथवा आत्मिक गुणों का युक्ति-युक्त विवेचन किया है, जो सैद्धान्तिक से अधिक मनोवैज्ञानिक है और साधक को विभिन्न भूमिकाओं के परिप्रेक्ष्य में अन्तर एवं बाह्य, निश्चय एवं व्यवहार, विविध दृष्टियों के समावेश के कारण विचारोत्तेजक है; अतः पठनीय एवं मननीय है। उक्त

भकृति बाद में छह भाषाओं में 1 लाख 31 हजार 800 की संख्या में छपी। आज भी समाज उसका भरपूर लाभ लेती है।

डॉ. राजकुमारजी जैन, प्रोफेसर, आगरा कॉलेज लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल ने इस ग्रंथ में धर्म के दशलक्षणों की बड़ी ही वैज्ञानिक एवं हृदयग्राही विवेचना की है। दशलक्षण धर्म पर अध्यात्मचिन्तन-प्रधान एवं मनोरम विवेचना प्रथम बार ही देखने को मिली। ग्रन्थ के प्रत्येक पृष्ठ पर डॉ. भारिल्ल के गहन आत्मचिन्तन एवं उनकी सरस, सुबोध तथा आत्मस्पर्शी शैली के दर्शन होते हैं। निश्चय ही इस ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार से आत्मरसिकजनों को धर्म के मर्म का सम्यक् बोध होगा और उनमें यथार्थ धर्म-चेतना जागृत होगी। दशलक्षण धर्म पर बड़ी महत्त्वपूर्ण रचना आपने मुमुक्षु जगत् को प्रदान की है। एतदर्थ प्रत्येक अध्यात्मप्रेमी आपका चिरऋणी रहेगा।

डॉ. कूलभूषण लोखंडे, सोलापुर (महाराष्ट्र) लिखते हैं –

अध्यात्म-विद्या के लोकप्रिय प्रवक्ता तथा उच्चकोटि के विद्वान डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'धर्म के दशलक्षण' नामक पुस्तक में पर्यूषण में होने वाले उत्तमक्षमादि दशधर्मों के संबंध में मार्मिक विवेचन प्रस्तुत हुआ है। इस ग्रन्थ में डॉ. भारिल्लजी ने दशलक्षण महापर्व के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विवरण देकर उत्तमक्षमा से लेकर उत्तमब्रह्मचर्य तथा क्षमावाणी तक का गंभीर एवं तलस्पर्शी विवेचन किया है। डॉ. भारिल्ल की दृष्टि वैसे पर से स्व तक ले जाने की, विकार से निर्विकार की ओर या विभाव से स्वभाव की ओर ले जाने की सूक्ष्म है, फिर भी सरल है– यह इस ग्रन्थ के द्वारा स्पष्ट होता है। हम समझते हैं कि ऐसे मूलग्राही व धर्म के अंगों का सही चिन्तन प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ की अतीव आवश्यकता है। वह आवश्यकता डॉ. भारिल्ल ने इस ग्रन्थ द्वारा पूर्ण की है।

डॉ. नरेन्द्र भानावत, सम्पादक, जिनवाणी लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता होने के साथ–साथ प्रबुद्ध विचारक, सरस कथाकार और सफल लेखक हैं। उनकी सद्य प्रकाशित पुस्तक 'धर्म के दशलक्षण' एक उल्लेखनीय कृति है। इसमें उत्तमक्षमा–मार्दव आदि दशधर्मों का गूढ़ पर सरस, शास्त्रीय पर जीवन्त, प्रेरक, विवेचन–विश्लेषण हुआ है। लेखक ने धर्म के इन लक्षणों को चित्तवृत्तियों के रूप में प्रस्तुत कर धर्म, मनोविज्ञान और साहित्य का सुन्दर समन्वय किया है। लेखक शास्त्रीय संवेदन के धरातल से प्रेरित होकर अपनी बात अवश्य कहता है, पर वह उसकी रूढ़िवादिता व गतानुगतिकता से ऊपर उठकर धर्म की प्रगतिशीलता एवं मन–स्तत्त्वता को रेखांकित करता हुआ उसे शाश्वत जीवनमूल्य के रूप में व्याख्यायित करता है। भारिल्लजी की यह दृष्टि पुस्तक को मूल्यवत्ता प्रदान करती है।

डॉ. देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री, नीमच (म.प्र.) लिखते हैं –

निबन्धों के रूप में तात्त्विक विश्लेषण प्रस्तुत करने वाली यह रचना जिस धरातल पर लिखी गई है, वह सचमुच अनूठी है। इसमें ज्ञान का पुट तो है ही, पर विवेचन की सहज स्फीत शैली में दृष्टान्तों का प्रयोग भी पर्याप्त रूप से लक्षित होता है। कहीं–कहीं व्यंग्य भी मुखर हो उठा है। धर्म के दश लक्षणों का विवेचन करने में विभिन्न दृष्टियों का भी उचित समावेश हुआ है। मनोविज्ञान और विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों के संदर्भ में इसका मूल्यांकन सभी प्रकार से महत्त्वपूर्ण है।

इस पुस्तक की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रत्येक बात इतनी स्पष्टता के साथ युक्तिपूर्ण ढंग से कही गई है कि आदि से अन्त तक रोचकता परिलक्षित होती है। वास्तव में निबन्ध की शैली में ये भाषण ही हैं। लेखक के सामने श्रोता, वह स्वयं वक्ता है। इसलिये

उनको समझाने की दृष्टि से जितनी बातें कही जा सकती हैं, उनको क्रमबद्ध रूप में कहा है। इससे लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से इनमें झाँकता हुआ दिखलाई पड़ता है। अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चलती हुई भाषा के शब्द प्रयोगों का भरपूर उपयोग किया गया है। चलती हुई भाषा में ही लेखक की टोन का पैनापन मालूम पड़ता है और इसी के कारण पुस्तक में सर्वत्र नयापन आ गया है। क्योंकि तर्क और युक्तियाँ किसी सीमा तक ही अपने विषय की स्थापना करने में सक्षम होती हैं। लेखक ने उनको छोड़ा नहीं है, घुमा-फिराकर उनसे बराबर काम लिया है, लेकिन उनके आगे अपनी शैली की छाप लगाने में भी नहीं चूका है। वही लेखक की सबसे बड़ी सफलता है, जो उसकी प्रतिभा की सूझ-बूझ को प्रकट करने वाली है।

लेखक का विषय-विवेचन ऐसा है कि साधारण व्यक्ति भी बिना किसी कठिनाई के सरलता से समझ सकता है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत अंश है - सारी दुनिया परिग्रह की चिन्ता में ही दिन-रात एक कर रही है, मर रही है। कुछ लोग पर-पदार्थों के जोड़ने में मग्न हैं, तो कुछ लोगों को धर्म के नाम पर उन्हें छोड़ने की धुन सवार है। यह कोई नहीं सोचता कि वे मेरे हैं ही नहीं, मेरे जोड़ने से जुड़ते नहीं और ऊपर से छोड़ने से छूटते भी नहीं।

यद्यपि कहीं-कहीं लेखक की टोन उग्र हो गई है, किन्तु विषय के प्रतिपादन में ऐसा होना स्वाभाविक था; क्योंकि इसके बिना उसकी बात में बल नहीं आ सकता था। ऐसा भी लगता है कि रचना में आदि से अन्त तक इसीप्रकार की अभिव्यक्ति होने से यह लेखक का अपना व्यक्तिगत गुण है, जो उसके व्यक्तित्व की अभिव्यंजना के साथ प्रकट हो गया है। इसलिए यह विशेषता ही मानी जायेगी।

यद्यपि धर्म के दश लक्षणों को दशधर्म मानकर आज तक जैन समाज में कई छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और उनका कई

बार प्रकाशन भी हो चुका है; किन्तु जिस तरह की यह पुस्तक लिखी गई है, निस्सन्देह यह अनूठी है। इसकी विलक्षणता यह है कि इसमें निश्चय और व्यवहार दोनों ही दृष्टियों का सन्तुलन कर धर्म की वास्तविकता का विवेचन किया गया है। सही बात को समझाने का बराबर ध्यान रखा गया है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की यह महत्त्वपूर्ण रचना न केवल अध्यात्म–दृष्टि वालों के लिए ही उपयोगी है, बल्कि व्यवहार की बुद्धि रखने वाले भी इसे पढ़कर व्यवहार की सच्चाई को स्वयं समझ सकते हैं। दशलक्षणी पर्व में व्याख्यान देने वाले पण्डितों के लिए तो इस पुस्तक का एक बार वाचन कर लेना मैं अनिवार्य समझता हूँ। जबतक हम अपनी वास्तविकता को नहीं समझेंगे, तबतक भलीभाँति सिद्धान्तों से अनबूझ जनता को कैसे समझा सकते हैं? फिर प्रत्येक विषय का लेखक ने विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया है। इसलिये यह मानना अनुचित होगा कि विद्वान् लेखक ने अपने शिष्यों व भक्तों के लिए ही उक्त रचना का निर्माण किया है।

आशा है विद्वज्जन ऐसी रचनाओं का अवश्य आदर करेंगे। •

**"जब तक स्वयं परखने की शक्ति न हो,
उधार की बुद्धि से कुछ लाभ नहीं होता।"**

**"समझौते में सत्यवादी की नहीं,
शक्तिशाली की बात मानी जाती है।"**

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

छठवाँ अध्याय

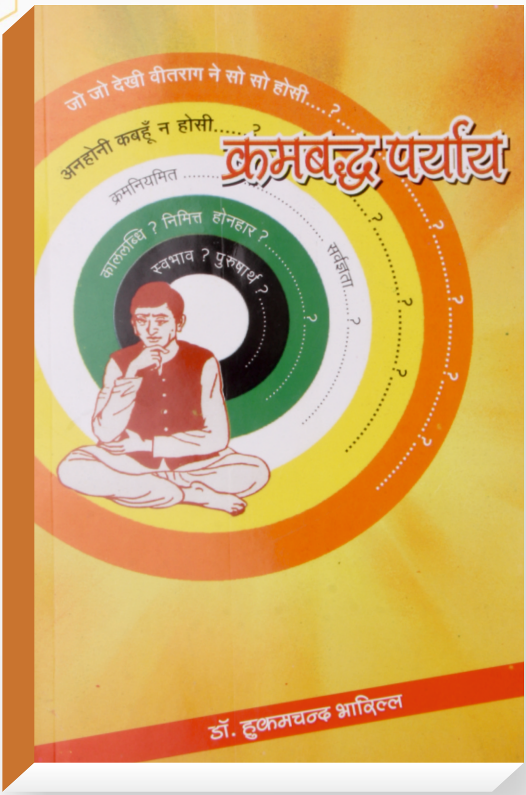

क्रमबद्धपर्याय

क्रमबद्धपर्याय भी अब जानकार जैनों से अज्ञात नहीं है। आज से लगभग दो दशक पूर्व हमने इस पर जैनसंदेश में बहुत लिखा था और जैनगजट में उसके सम्पादक पं. अजितकुमारजी शास्त्री ने इसका विरोध किया था। खानियांचर्चा में यह विषय चर्चित हुआ था। इसको माने बिना सर्वज्ञता बनती नहीं और सर्वज्ञता को माने बिना जैनधर्म की स्थिति नहीं है। जो इसका विरोध करते हैं, वे जैनधर्म के मूल पर कुठाराघात करते हैं।

डॉ. भारिल्लजी की भाषा परिमार्जित, साहित्यिक, सरल, सुबोध और भावात्मक तो है ही, साथ में प्रभावक भी है, जो पाठकों को अपनी ओर बरबस आकर्षित करती है। ऐसी रचना को सत्साहित्य भी कहते हैं। जो विद्वान क्रमबद्धपर्याय से मतभेद रखते हैं, उनके लिए तो विद्वान भारिल्लजी की यह नूतन मौलिक रचना एक रामबाण औषधी की तरह काम देगी – ऐसा मैं मानता हूँ।

क्रमबद्धपर्याय

आत्मधर्म के 24 संपादकीयों के रूप में 'धर्म के दशलक्षण' विषय समाप्त होने पर 'क्रमबद्धपर्याय' विषय पर लिखना आरम्भ किया; जो 13 संपादकीयों में चला। गुरुदेवश्री ने जिन क्रान्तिकारी विषयों को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है; उन विषयों पर गुरुदेवश्री की उपस्थिति में जितना लिखा जाये, प्रामाणिकता के लिए वह अत्यन्त उपयोगी रहेगा।

क्रमबद्धपर्याय पर सम्पादकीय लिखते समय क्रमबद्धपर्याय विषय पर गुरुदेवश्री से एक इन्टरव्यू भी लिया था, जो क्रमबद्धपर्याय नामक पुस्तक के अन्त में छपा है। इन्टरव्यू भी गुरुदेवश्री एवं विद्वतवर्ग को बहुत पसन्द आया।

वयोवृद्ध विद्वान ब्र. पं. मुन्नालालजी रांधेलीय (वर्णी), न्यायतीर्थ, सागर (म. प्र.) लिखते हैं –

यह पुस्तक बहुत ही खोजपूर्ण और सुन्दर ढंग से बेजोड़ लिखी गई है। इसमें डॉ. भारिल्लजी ने जैन सिद्धान्त के सार को अपनी वरद् लेखनी द्वारा विस्तार से लिखा है। पुस्तक का मुख्य प्रयोजन संसार के कारणभूत कर्तृत्व आदि के मिथ्या अहंकार को मिटाना है।

पुस्तक में अनेकान्त शैली से वस्तुस्वभाव बताया है। स्याद्वाद और अनेकान्त जैन तत्त्वों के मापदण्ड हैं, उसमें द्रव्य–गुण–पर्याय सभी गर्भित हैं तथा उसमें लागू होने वाले नियम कभी बदलते नहीं हैं। जो जीव

अज्ञानतावश बदलने का अहंकार करता है, वह दीर्घसंसारी है, इसमें भय और दबाव का काम नहीं है, यह तो वस्तुस्वभाव का चित्रण है।

क्रमबद्धपर्याय मानने पर अकालमृत्यु के कहने से कोई बाधा नहीं आती। वस्तुतः तो अकालमृत्यु कभी होती ही नहीं, पर्याय स्वयं अपने समय में बदलती है, असमय में नहीं। अतएव भ्रम छोड़ देना चाहिए। हमारी शुभकामना है कि भारिल्लजी से शतायुष्क तक समाज लाभ उठाये। इस पुस्तक के अतिरिक्त धर्म के दशलक्षण, तीर्थंकर भगवान महावीर, अपने को पहिचानिये (मैं कौन हूँ) आदि कृतियाँ भी अपूर्व संग्रहणीय एवं मननीय हैं।

वयोवृद्ध विद्वान ब्र. जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी लिखते हैं –

क्रमबद्धपर्याय का कथन आचार्य अमृतचन्द्र की आत्मख्याति टीका (समयसार) में आया है। उन्होंने क्रमनियमित शब्द का प्रयोग किया है। दोनों शब्दों का अर्थ समान ही है। जो क्रमनियमित हो, वह क्रमबद्ध है और जो क्रमबद्ध हो, वह क्रमनियमित है; अर्थभेद नहीं है। बल्कि क्रमबद्ध में पर्याय के क्रम की ही सूचना है और क्रमनियमित में वह पर्याय केवल क्रमबद्ध ही नहीं, किन्तु जिन-जिन कारणों के संदर्भ में वह पर्याय है, वे सब कारण तथा उनका यथासमय संयोग भी नियमित है, यह स्पष्ट होता है। इसका विरोध आचार्य अमृतचन्द्र का ही विरोध है।

डॉ. भारिल्ल कलम के धनी हैं; अतः उनके द्वारा लिखी गई उक्त पुस्तक यथार्थ तत्त्व के निरूपण करने में सफल है, यह कहा जा सकता है। क्रमबद्धपर्याय के सम्बन्ध में अनेक विद्वान् विवाद करते हैं, वे इसे स्वीकार नहीं करते। यह सब विरोध केवल इस आधार पर है कि डॉ. भारिल्ल सोनगढ़ पक्ष के हैं और सोनगढ़ पक्ष की ओर उक्त विद्वानों की वक्रदृष्टि है, अन्यथा वे भी विरोध न करते।

ब्र. यशपालजी जैन, एम. ए. बाहुबली (महाराष्ट्र) लिखते हैं –

वैसे क्रमबद्धपर्याय के सम्बन्ध में अनेक वर्षों से सुनता था, परन्तु अनेक शंकाएँ (मुख्यतः पुरुषार्थहीनता आ जाती है इत्यादि) मन में आकुलता उत्पन्न करती थीं; परन्तु जब से डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की 'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन व प्रश्नोत्तर' आत्मधर्म में तथा पुस्तक रूप में समग्र पढ़ने को मिली तो सब शंकाएँ स्वयं गायब हो गईं। क्रमबद्धपर्याय एक संतोषप्रदायिनी अनुपम घूटी है, ऐसी मेरी श्रद्धा बन गई है।

आगमोक्त तर्कों से तथा युक्तियों से कठिन विषय अत्यन्त रोचक रीति से पाठकों के सामने रखा है। क्रमबद्धपर्याय विषय पर डॉ. भारिल्लजी के प्रवचन सुनना भी विषय निर्णय के लिये लाभदायक सिद्ध होता है, ऐसा मेरा तथा अनेक तत्त्वरसिकों का सफल अनुभव है। जिज्ञासु इसका भी लाभ उठावें।

पूज्य श्री कानजीस्वामी के उत्तर (इन्टरव्यू) में तो इस पुस्तक का सर्वोपरि स्वानुभवगर्भित अमृत है। प्रत्येक आगमश्रद्धालु व्यक्ति तथा आगमाभ्यासी को इस पुस्तक का दिल खोलकर स्वागत करना चाहिए।

सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी, वाराणसी लिखते हैं –

क्रमबद्धपर्याय भी अब जानकार जैनों से अज्ञात नहीं है। आज से लगभग दो दशक पूर्व हमने इस पर जैनसंदेश में बहुत लिखा था और जैनगजट में उसके सम्पादक पं. अजितकुमारजी शास्त्री ने इसका विरोध किया था। खानियांचर्चा में यह विषय चर्चित हुआ था। इसको माने बिना सर्वज्ञता बनती नहीं और सर्वज्ञता को माने बिना जैनधर्म की स्थिति नहीं है। जो इसका विरोध करते हैं, वे जैनधर्म के मूल पर कुठाराघात करते हैं।

जब केवलज्ञान सब द्रव्यों की सब पर्यायों को जानता है अर्थात्

भूत और वर्तमान पर्यायों की तरह भावी पर्यायों को जानता है – ऐसी कोई पर्याय नहीं है जो उसका विषय न हो तो ही सर्वज्ञता बनती है। किस द्रव्य की कौन पर्याय किस काल में होगी, यह सर्वज्ञ जानता है। इस तरह जब प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसे ज्ञात है; तब पर्याय का क्रम तो सुनिश्चित होना ही चाहिए।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार के प्रथम अधिकार में इसे सुस्पष्ट किया है। हाँ, क्रमबद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया। आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार के सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार के प्रारम्भ में क्रमनियमित या क्रमनियत पद का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ क्रमबद्ध ही होता है।

जिसे आगम में अकालमरण कहा है, वह भी अक्रमनियत नहीं है। किस जीव ने कितनी आयु का बन्ध किया है और वह आयु पूरी करके मरेगा या अकाल में ही अर्थात् आयु का समय पूरा होने से पूर्व ही उदीरणा प्रत्यय के द्वारा मरेगा, यह भी सर्वज्ञ से अज्ञात नहीं है। अकाल का आशय है जितनी आयु बाँधी, उसे पूर्ण न भोगकर मरण। श्रुतज्ञान में वह अकालमरण कहा जाता है; किन्तु सर्वज्ञ के ज्ञान में वह भी प्रतिभासित है।

इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने इस पर विचार किया है और प्रश्नोत्तर द्वारा अच्छा प्रभाव डाला है। छपाई, कागज, गेट-अप सभी सुन्दर और आकर्षक हैं।

विद्वद्वर्य पण्डित खीमचन्द जेठालाल शेठ, सोनगढ़ लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी शास्त्री ने आत्मज्ञसन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी के श्री समयसार गाथा 308-309-310-311 पर हुए अध्यात्मरसपूर्ण अत्यन्त सूक्ष्म भाववाही प्रवचनों तथा अन्य अनेक शास्त्रों के आधार से इस क्रमबद्धपर्याय नामक शास्त्र की अद्वितीय रचना की है, जो जीव इसका वाँचन-मनन करके अन्तर्मुख परिणमन करेंगे, उनकी अनन्त

पदार्थों की कर्तृत्वबुद्धि तथा अपनी पर्यायों में फेरफार करने की बुद्धि अवश्य छूट जाएगी। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से अनन्त आकुलता का अभाव होकर अनन्त वीतरागता प्रकट होती है और वही इस शास्त्र का तात्पर्य है। ऐसे वीतरागपोषक शास्त्र की रचना करने के लिए पण्डितजी अभिनन्दन के पात्र हैं। सभी जीव इस शास्त्र का यथार्थ भाव समझकर विशुद्धता को प्राप्त करें – यही आन्तरिक भावना है।

सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता पण्डित श्री लालचंद भाई मोदी, राजकोट (गुजरात) लिखते हैं –

आत्मज्ञानी के हृदय को अनेक युक्तियों से खोलनेवाली एवं आगम पर आधारित डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की यह कृति क्रमबद्धपर्याय प्रशंसनीय है।

पण्डित नन्हेलालजी सिद्धान्तशास्त्री, राजाखेड़ा लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल के प्रतिभा–सम्पन्न ज्ञान की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है। डॉ. भारिल्ल ने इस छोटी–सी अवस्था में अनेक मार्मिक, आगमिक विषयों के मनन और चिन्तन के साथ उन विषयों को जैनजगत के समक्ष लिपिबद्ध करके प्रस्तुत किया है, यह उनके विशिष्ट क्षयोपशम और परभवगत पुण्य की बात है, मेरा शुभभाव के साथ शुभाशीर्वाद है कि उनका भविष्य इससे भी अधिक प्रगतिशील बने।

पण्डित रतनलालजी कटारिया, केकड़ी (राज.) लिखते हैं –

क्रमबद्धपर्याय पर आज तक किसी ने इतना मनन–चिन्तनपूर्वक लेखन नहीं किया है। आपका विश्लेषण बहुत सुन्दर बन पड़ा है, जो कुछ लिखा गया है, वह रोचक और युक्ति–युक्त है। आपका परिश्रम वस्तुतः स्तुत्य है। पुस्तक की छपाई, सफाई आदि सब आकर्षक हैं। श्रुतसेवा के लिए साधुवाद।

पं. भंवरलालजी पोल्याका, जैनदर्शनाचार्य, मारोठ लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा रचित 'क्रमबद्धपर्याय' नामक पुस्तक का मैंने आद्योपान्त शब्दशः पारायण किया है और मुझे यह लिखने में जरा भी संकोच नहीं है कि ऐसे शुष्क दार्शनिक विषय को जिस रोचक एवं तर्कपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है वह डॉ. भारिल्ल की लेखनी से ही अनुस्यूत हो सकती थी।

'क्रमबद्धपर्याय' श्रद्धा का विषय है और यह सच है कि उसे बिना जाने-माने जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह पुस्तक स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए उपयोगी है। प्रकाशन सर्वांग सुन्दर है। लेखक, मुद्रक एवं प्रकाशक सभी इसके लिए बधाई के पात्र हैं। ट्रस्ट द्वारा जो जिनवाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है, वह दीर्घकाल तक चलता रहे – यही कामना है।

श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन, प्राचार्य, फिरोजाबाद लिखते हैं –

'क्रमनियमितपर्याय' जैनदर्शन का एक बहुचर्चित सिद्धान्त है। मुख्यतः आज के युग में इसके पक्ष और विपक्ष में खूब चर्चा होती रही है। इस विषय पर विद्वज्जनों के मतभेद किसी से छिपे नहीं हैं। मुझे खुशी है कि इस सन्दर्भ में इतने विस्तार से सभी पहलुओं का स्पर्श करते हुए तथा सामान्य पाठक की समझ में आ सकने योग्य सीधी-सरल भाषा में पहली बार ही लिखा गया है। यों तो दार्शनिक गुत्थियाँ प्रायः गूढ़ एवं शुष्क हुआ करती हैं; किन्तु डॉ. भारिल्लजी उन्हें रुचिकर एवं सरस बनाकर प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। मैं उनके इस कमाल का सादर अभिवादन करता हूँ।

जो लोग इस सिद्धान्त से अब भी मतभेद रखते हैं, इस ग्रन्थ के प्रकाशन से उन्हें भी एक अवसर मिला है कि वे अथाह आगम-सिन्धु में पुनः पुनः गोते लगाएँ और नये-नये मोती ढूँढ़कर लायें। मुझे पूर्ण आशा है कि तत्त्व-चिन्तन और चर्चा के इस स्वस्थ एवं सन्तुलित

प्रयास को संपूर्ण जैनजगत में निश्चय ही सराहा जायेगा। अपनी ओर से विद्वान लेखक को हार्दिक साधुवाद प्रेषित करता हूँ।

पण्डित उदयचन्द्रजी जैन, प्राध्यापक, वाराणसी लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित क्रमबद्धपर्याय का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि यह पुस्तक जैनदर्शन के गूढ़ सिद्धान्त पर्यायों की क्रमबद्धता को आगमिक तथा तार्किक आधारों पर सप्रमाण सिद्ध करती है। पर्यायों की क्रमबद्धता में जो अनेक आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं, उनका समाधान भी प्रश्नोत्तर के रूप में उत्तम रीति से किया गया है। पर्यायों की क्रमबद्धता में सबसे बड़ा दोष पुरुषार्थ की निष्क्रियता का आता है; किन्तु जब सब कुछ क्रमबद्ध है, तब पुरुषार्थ भी तो उसी के गर्भ में समाहित है। महावीर ने भगवान बनने के लिए अपने पूर्वभवों में जो पुरुषार्थ किया, उसे पर्यायों की क्रमबद्धता के नियमानुसार करना ही था। ऐसा नहीं है कि यदि वे चाहते तो पुरुषार्थ न करते। पुरुषार्थ करना या न करना उनके आधीन नहीं था। अतः जो वस्तु या पर्याय क्रमनियत है, उसे कोई बदल नहीं सकता।

पर्यायों की क्रमबद्धता की सिद्धि में सर्वज्ञता एक प्रमुख आधार है और जैनदर्शन का भवन सर्वज्ञता की नींव पर ही आधारित है। जो व्यक्ति जैनदर्शन प्रतिपादित सर्वज्ञ को मानता है, उसे क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त को मानना आवश्यक है। जिनका विश्वास सर्वज्ञ में न हो, वे भले ही पर्यायों की क्रमबद्धता के सिद्धान्त से मुक्ति पा सकते हैं।

क्रमबद्धपर्याय एक गंभीर विषय है और श्री कानजीस्वामी द्वारा यह विषय विशेष रूप से प्रकाश में लाया गया है। अतः इस गम्भीर विषय को समझने के लिए डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की महत्त्वपूर्ण कृति क्रमबद्धपर्याय का अध्ययन, मनन तथा चिन्तन आवश्यक है। इस उपयोगी रचना के लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

पण्डित भरत चक्रवर्ती जैन, न्यायतीर्थ, मद्रास लिखते हैं –

इसमें सन्देह नहीं कि 'क्रमबद्धपर्याय' एक अनुपम कृति है। आपने यह सिद्ध कर दिया है कि बिना सर्वज्ञता के माने 'क्रमबद्धपर्याय' का वास्तविक ज्ञान संभव नहीं है; क्योंकि हम अल्पज्ञों के ज्ञान में 'क्रमबद्धपर्याय' झलकती नहीं है। इसकी पुष्टि में उद्धृत पूज्यश्री कुन्दकुन्द, पूज्यपाद आदि महान आचार्यों की पंक्तियाँ निरन्तर स्मृति में रखने योग्य हैं। साथ ही सर्वथा एकान्त नियतवाद, पुरुषार्थहीनता, अकर्त्तृत्वपना आदि हेतुहीन वादों का निराकरण करते हुए आपने आगम, युक्ति एवं लौकिक उदाहरण के साथ यह दर्शाया है कि पुरुषार्थ, कर्त्तृत्वपना आदि किस प्रकार क्रमबद्धपर्याय के साथ उलझे पड़े हैं। अपमृत्यु के सम्बन्ध में आपका स्पष्टीकरण अत्यन्त प्रशंसनीय है। जटिल विषयों को सरस वाणी में व्यक्त करने की कला आप में अनोखी है। अनुशीलन के साथ संलग्न संभावित प्रश्नोत्तर तथा इन्टरव्यू तो सोने में सुगन्ध वाली लोकोक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। संक्षेप में इसे चारों अनुयोगरूप महासागर को मथकर निकाला गया 'सिद्धान्तामृत' कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

पण्डित बंशीधरजी शास्त्री, एम. ए., जयपुर लिखते हैं –

इस शताब्दी में श्री कानजी स्वामी ने 'क्रमबद्धपर्याय' नामक अमूल्य चिन्तामणिरत्न जैनसिद्धान्त-ग्रन्थों के मंथन से प्राप्त कर सर्वसाधारण को भी सुलभ कर दिया। यद्यपि पहले स्वामी कार्तिकेय, समन्तभद्र व भैया भगवती दास ने अपने साहित्य में इस मान्यता की पुष्टि की थी; किन्तु इसका जैसा प्रचार श्री कानजी स्वामी द्वारा हुआ, वैसा पहले नहीं हो पाया था। कुछ लोगों ने इसका अन्य कारणों से विरोध किया, किन्तु उन्हें सर्वज्ञता या अवधिज्ञान के आधार पर इसे फलितार्थ के रूप में मानना ही पड़ता था, पड़ता है और पड़ेगा।

पण्डित ज्ञानचन्द्रजी स्वतंत्र, शास्त्री, गंजबासौदा लिखते हैं –

पर्याय की क्रमबद्धता की स्वीकृति में कर्तृत्ववाद और अहंवाद नहीं होता। स्वचतुष्टय के अनुसार द्रव्य का परिणमन अनादिकाल से प्रवाहरूप में चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। इसे परिवर्तित करने का अधिकार किसी को नहीं है, जिसे क्रमबद्धपर्याय परिवर्तित करने का अहम् है, वे इस पुस्तक को मनोयोगपूर्वक समझने की दृष्टि से पढ़ें तो उनके अहम् का नशा अवश्य ही उतर जायेगा। द्रव्य (जड़ और चेतन) का परिणमन मेरी इच्छानुसार हो, ऐसा जो भाव है, वही अगृहीत मिथ्यात्व है। जब तक द्रव्य के परिणमन की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार न किया जायेगा, तब तक अगृहीत मिथ्यात्व टल नहीं सकता।

डॉ. भारिल्लजी की भाषा परिमार्जित, साहित्यिक, सरल, सुबोध और भावात्मक तो है ही, साथ में प्रभावक भी है, जो पाठकों को अपनी ओर बरबस आकर्षित करती है। ऐसी रचना को सत्साहित्य भी कहते हैं। जो विद्वान क्रमबद्धपर्याय से मतभेद रखते हैं, उनके लिए तो विद्वान भारिल्लजी की यह नूतन मौलिक रचना एक रामबाण औषधी की तरह काम देगी – ऐसा मैं मानता हूँ।

पहले पण्डित फूलचन्दजी शास्त्री के जैनतत्त्व-मीमांसा व खानियाँ तत्त्वचर्चा में इसको जैनागम से सही सिद्ध किया था। इस पर अनेक प्रकार से ऊहापोह होता रहा है। इसलिए आवश्यकता थी कि इस सारे ऊहापोह को श्री कानजीस्वामी के मन्तव्यों के साथ सरल शैली व भाषा में प्रस्तुत किया जाए, ताकि जनसाधारण भी इस तत्त्व को समझकर, राग-द्वेष छोड़कर आत्मकल्याण के भाजन बनें। मुझे प्रसन्नता है कि डॉ. हुकमचन्दजी ने इस विषय पर सरल, सुबोध शैली व भाषा में शास्त्रीय प्रमाणों सहित सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक क्रमबद्धपर्याय को सम्यक् रूप से समझने में जिज्ञासु, विवेकशील पाठकों के लिए

लाभदायक होगी। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने भी इसकी दस हजार प्रतियाँ प्रथम संस्करण में प्रकाशित कर श्री कानजीस्वामी के शास्त्र-सम्मत मन्तव्यों के प्रचार में अनूठा योगदान दिया है। प्रकाशित पुस्तक लेखन व प्रकाशन दोनों ही दृष्टियों से सर्वोत्तम रूप से मनमोहक बनी है। इसके लिए लेखक व प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

पण्डित धन्यकुमारजी भोरे, न्यायतीर्थ, कारंजा लिखते हैं –

वर्तमान में बहुचर्चित विषय क्रमबद्धपर्याय पर इस पुस्तक में खूब प्रकाश पड़ता है। आपका प्रयास मुख्यतः केवलज्ञान-सर्वज्ञता के आधार पर क्रमनियतपर्याय का समर्थन करना है। यह तो आपने दो-चार जगह स्पष्ट किया ही है कि पर्यायों के क्रम का कर्त्ता केवलज्ञान नहीं है।

विषय की गंभीरता अगाध है। अध्यात्म ग्रन्थों का सुव्यवस्थित आधार दिया है। पुस्तक का मुद्रण, कागज, गेटअप आदि उत्कृष्ट हैं।

डॉ. उत्तमचन्दजी जैन, सिवनी (म.प्र.) लिखते हैं –

'क्रमबद्धपर्याय' नामक कृति निश्चित ही अद्वितीय, गंभीर, सतर्क, सप्रमाण, सोदाहरण सर्वजनग्राह्य एवं सर्वज्ञता का सचोट ढिंढोरा पीटती प्रतीत होती है। इस ढिंढोरे में ही क्रमबद्धपर्याय की सहज एवं स्पष्ट झलक ज्ञानगोचर होती है। आचार्य समन्तभद्र के युग में जरूरत थी सर्वज्ञता का डंका बजाने वाले की, जिसे स्वयं समन्तभद्राचार्य ने पूर्ण किया। पूज्य सन्त कानजीस्वामी के इस युग में आवश्यकता थी क्रमबद्धपर्याय का नगाड़ा बजाने वाले की, जिसे डॉ. भारिल्ल साहब ने अपनी उक्त कृति द्वारा पूर्ण करने का प्रयास किया है, जिसके लिए वे सदा तत्त्वान्वेषियों द्वारा धन्यवादार्ह रहेंगे।

डॉ. पन्नालालजी जैन, साहित्याचार्य, सागर लिखते हैं –

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से द्रव्य परिणमनशील है। द्रव्य का यह परिणमन सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकता है। यद्यपि द्रव्य का परिणमन

द्रव्य के स्वाधीन है और सर्वज्ञ के ज्ञान का परिणमन सर्वज्ञ के स्वाधीन है; तथापि यह निश्चित है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में प्रत्येक द्रव्य की त्रिकालवर्ती पर्यायें झलकती हैं। अत: सर्वज्ञता को स्वीकृत करने वाले के सामने पर्यायों की क्रमबद्धता स्वत:सिद्ध है।

डॉ. हरीन्द्रभूषणजी जैन, उज्जैन विश्वविद्यालय लिखते हैं –

क्रमबद्धपर्याय जैनदर्शन की एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा है, सर्वज्ञता के प्रसंग में सर्वत्र इस पर विचार किया गया। इन दोनों तत्त्वों का विचार करते समय इनसे सम्बद्ध अनेक बातों का विश्लेषण करना आवश्यक होता है, जैसे – अनेकान्त, प्रमाण, नय, नियतिवाद एवं पुरुषार्थवाद, कर्तृत्व–अकर्तृत्व, द्रव्य–गुण–पर्याय, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य, निमित्त नैमित्तिक, पंच समवाय आदि।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने उपर्युक्त सभी बातों के माध्यम से क्रमबद्धपर्याय का जो सुन्दर, सयुक्तिक एवं प्रामाणिक विवेचन किया है, वह उनके सतत ज्ञानाराधन एवं श्रमशीलता का निदर्शन है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि प्रबुद्धजन इस अमूल्य कृति से लाभान्वित होंगे। मैं डॉ. भारिल्लजी को उनकी इस महत्त्वपूर्ण रचना पर साधुवाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि वे निश्चय–व्यवहार, निमित्त–उपादान आदि विषयों पर इसी प्रकार पुस्तिकायें लिखकर समाज को लाभान्वित करेंगे।

डॉ. देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री, नीमच लिखते हैं –

डॉ. भारिल्लजी ने प्रस्तुत पुस्तक में तर्कप्रधान शैली में सभी अनुयोगों की दृष्टि से विस्तार के साथ सारगर्भित विवेचन किया है। जैनदर्शन व सर्वज्ञता की मूल प्रतिपत्ति को समझने के लिए पुस्तक सर्वथा उपयोगी है। आशा है कि सभी प्रकार के पाठक इससे लाभान्वित होंगे। इस सुन्दर व उपयोगी प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

डॉ. भागचन्द्रजी जैन, अध्यक्ष : नागपुर विश्वविद्यालय लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल जैन धर्म और दर्शन के एक सुपरिचित चिन्तक विद्वान हैं। क्रमबद्धपर्याय जैसे दुर्बोध, दार्शनिक एवं विवादास्पद विषय को सुबोध एवं निर्विवाद बनाने का प्रयत्न आपने प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से किया है। यह इनकी प्रतिभा व अभिव्यक्ति क्षमता का सुन्दर उदाहरण है। अतः इतनी अच्छी और उपयोगी पुस्तक के लेखक निश्चितरूप से अभिनन्दनीय हैं।

डॉ. चन्दुभाई टी. कामदार, राजकोट (गुजरात) लिखते हैं –

प्रस्तुत कृति 'क्रमबद्धपर्याय' का मैंने अत्यन्त गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया। इस विषय को आपने मौलिक रूप में जिस सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है, उसका अध्ययन करते हुए अत्यन्त आनन्द होता है, उसमें जो वस्तु व्यवस्था की चर्चा की है; क्रमनियमित अवस्था यही वस्तु की व्यवस्था है।

केवलज्ञान के आधार से आगम और युक्ति द्वारा अनेक प्रकार से जो वस्तुस्वरूप सिद्ध किया है; उसका गंभीरतापूर्वक विचार करने वाले को पर का और अपनी पर्याय का कर्तृत्व उड़ जाता है तथा अकर्त्तापने का स्वभाव सम्मुख अनन्त पुरुषार्थ जागृत हुए बिना नहीं रहता। यह तो भवभ्रमण टालने का अमोघ उपाय आपने सुन्दर ढंग से बताया है। इस सुन्दर कृति के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। ऐसा सुन्दर कार्य करते रहें – यही भावना है।

डॉ. कुलभूषण लोखंडे, सम्पादक दिव्यध्वनि लिखते हैं –

डॉ. भारिल्ल एक अध्यात्मचिंतक एवं सूक्ष्म विवेचक हैं। आपने इस ग्रन्थ में क्रमबद्धपर्याय को लेकर समस्त जैन तत्त्वज्ञान का सागर क्रमबद्धपर्यायरूप गागर में भर दिया है। मेरी यह धारणा है कि निष्पक्ष भूमिका से और सही दिशा में श्रद्धा के साथ जिनाभ्यासुओं को इस पुस्तक द्वारा सही मार्गदर्शन होगा।

साहित्यकार श्री यशपालजी, सस्ता साहित्य, दिल्ली लिखते हैं –

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की लोकोपयोगी कृति 'क्रमबद्धपर्याय' पढ़कर मुझे आन्तरिक प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक में उन्होंने एक ऐसे गूढ़ विषय पर अत्यन्त सरल, सुबोध, प्रामाणिक तथा युक्तिसंगत ढंग से प्रकाश डाला है, जिसके सम्बन्ध में अधिकांश जैनसमाज अनभिज्ञ है; लेकिन जिसे जाने बिना व्यक्ति स्थायी शांति और वास्तविक सुख प्राप्त नहीं कर सकता। क्रमबद्धपर्याय का अनुशीलन हमें जीवन की गहराइयों में ले जाकर उन रत्नों को खोज निकालने की क्षमता प्रदान करता है, जो मानव जीवन को समृद्ध करते हैं, धन्य और कृतार्थ बनाते हैं। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक नई दृष्टि देती है और पूरी शक्ति से पुरुषार्थ करने को प्रेरित करती है। ऐसी उत्तम रचना के लिए मैं लेखक को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह पुस्तक जैन-जैनेतर समाजों में मनोयोगपूर्वक पढ़ी जावेगी।

सन्मति संदेश (मासिक), दिल्ली, जनवरी, 1980

समीक्ष्य प्रकाशन का विषय कुछ धर्मबन्धुओं को नया लग सकता है, किन्तु चारों अनुयोगों में पर्याय के नियमितक्रम होने का वर्णन आता है; क्योंकि वह वस्तु का स्वभाव है। किन्तु उसका गंभीरता से अध्ययन-मनन न होने से यह विषय जैनसमाज से अपरिचित ही रहा। अतः यह सुनिश्चित है कि इसके निर्णय के बिना कभी भी निर्भयता और वीतरागता नहीं आ सकती है।

श्री कानजीस्वामी ने इस विषय से हमको परिचित कराया है; जिसका सांगोपांग स्पष्टीकरण प्रस्तुत प्रकाशन में लेखक द्वारा आगम प्रमाण के परिप्रेक्ष्य में किया गया है, जिसे पढ़ लेने के पश्चात् कहीं भी कुछ अटकाव नहीं रह जाता है। इस विषय में जितनी भी शंकाएँ उठ सकती थीं; उन सबका इसमें समाधान मिल जाने से विषय सूर्य के

प्रकाश की तरह स्पष्ट हो जाता है। जिनको भी इस विषय में सत्य निर्णय करना हो, उन्हें इस ग्रंथ का अध्ययन-मनन विशेषरूप से करना चाहिए; क्योंकि इसमें बड़ी सूक्ष्मता से इस विषय का निरूपण है।

सन्मति-वाणी (मासिक), इन्दौर, मार्च, 1980

डॉ. भारिल्ल अच्छे वक्ता एवं लेखक हैं। प्रस्तुत रचना उनकी वक्तृत्व शैली के अनुरूप प्रतीत होती है? इसमें अनेक युक्तियों और दृष्टान्तों से प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें निश्चित क्रम से क्रमवार ही प्रगट होती हैं, यह सिद्ध किया गया है। क्रमबद्धपर्याय का प्रमुख आधार सर्वज्ञता बताया है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में त्रिकाल की पर्यायें सुनिश्चित क्रमवार वर्तमानवत् झलकती हैं, जो नियत हैं। लेखक का चिन्तन, अध्ययन और परिश्रम सराहनीय है।

इन अनेक विद्वानों से प्रशंसित यह कृति सामान्यजनों तक इस विषय को सहज पहुँचा देने में कारण बनेगी। ●

अनुशीलनों द्वारा तत्त्वज्ञान का प्रचार

आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों और प्रवचनरत्नाकरों के माध्यम से समयसारादि ग्रन्थ घर-घर में पहुँच गये थे, जन-जन की वस्तु बन रहे थे; तथापि इन ग्रन्थों पर विगत दो हजार वर्षों में क्या-क्या काम हुआ है, मैंने इसका अनुशीलन करना आवश्यक समझा और सन् 1991 से इन पर काम करना आरम्भ कर दिया और लगातार 30-35 वर्ष तक काम करता रहा। इससे मेरा अध्ययन तो गम्भीर हो ही गया; समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, तत्त्वार्थसूत्र, योगसार आदि ग्रन्थों का भी गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत हो गया; जो आज जन-जन की वस्तु बना हुआ है, जन-जन के काम आ रहा है। ●

अधूरी उल्टी आत्मकथा

सातवाँ अध्याय

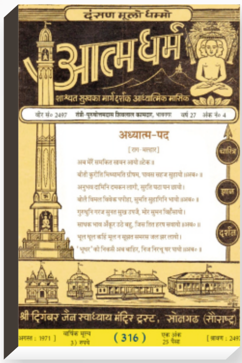

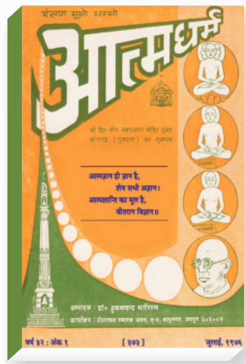

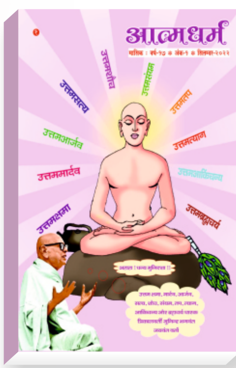

आत्मधर्म (पत्रिका)

"आत्मधर्म के प्रति मेरा सहज आकर्षण गत इक्कीस वर्षों से रहा है। सन् 1956 में जब सर्वप्रथम मुझे आत्मधर्म के क्रमबद्धपर्याय सम्बन्धी अंक प्राप्त हुए और मैंने उन्हें पढ़ा तो एकदम झंकृत हो उठा। उन्हें मैंने एक बार नहीं, अनेक बार पढ़ा। उनमें जो मुझे अभूतपूर्व वस्तु-तत्त्व मिला, उसने मेरा जीवन ही बदल डाला।"

"इस एक वर्ष के सम्पर्क में जो अगाध प्रेम पाठकों से प्राप्त हुआ है, उससे मुझे बहुत बल मिला है एवं मेरे उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

इसकी ग्राहक संख्या का एकदम बढ़ जाना भी पाठकों के हार्दिक स्नेह को सूचित करता है। एक वर्ष पहिले इसकी ग्राहक संख्या कुल दो हजार थी और स्थाई ग्राहक भी कुल दो सौ ही थे। आज यह आठ हजार छप रहा है और स्थाई ग्राहक भी एक हजार साठ हैं। एक वर्ष के भीतर ग्राहक संख्या चौगुनी एवं स्थाई ग्राहक पाँच गुने से भी अधिक हो जाना अपने-आप में अपूर्व उपलब्धि है।"

आत्मधर्म (पत्रिका)

यद्यपि पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आत्मा को स्पर्श करने वाले प्रवचनों का लाभ अध्यात्मप्रेमी पाठकगण आत्मधर्म के माध्यम से हिन्दी भाषा में गत 32 वर्ष से ले रहे हैं; तथापि आत्मधर्म के तत्त्वप्रेमी पाठकों से मेरा सीधा सम्पर्क गत एक वर्ष से ही हुआ है।

इस एक वर्ष के सम्पर्क में जो अगाध प्रेम पाठकों से प्राप्त हुआ है, उससे मुझे बहुत बल मिला है एवं मेरे उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। स्नेही पाठकों से मुझे समय-समय पर सैकड़ों पत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमें गुरुदेवश्री के प्रति तो अनंत श्रद्धा व्यक्त की ही गई है, मेरे प्रति भी असीम स्नेह प्रदर्शित किया गया है। समय-समय पर पूज्य गुरुदेवश्री से लिए गये इन्टरव्यू एवं दशधर्मों पर लिखे गये लेखों को भी पाठकों ने खूब सराहा है।

इसकी ग्राहक संख्या का एकदम बढ़ जाना भी पाठकों के हार्दिक स्नेह को सूचित करता है। एक वर्ष पहिले इसकी ग्राहक संख्या कुल दो हजार थी और स्थाई ग्राहक भी कुल दो सौ ही थे। आज यह आठ हजार छप रहा है और स्थाई ग्राहक भी एक हजार साठ हैं। एक वर्ष के भीतर ग्राहक संख्या चौगुनी एवं स्थाई ग्राहक पाँच गुने से भी अधिक हो जाना अपने-आप में अपूर्व उपलब्धि है।

हिन्दी आत्मधर्म की बढ़ती लोकप्रियता से उत्साहित होकर श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, बम्बई ने मराठी में एवं श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, बैंगलौर ने कन्नड़ में इसका प्रकाशन करने का निर्णय

लिया है। उक्त दोनों भाषाओं में भी आत्मधर्म का प्रकाशन हिन्दी आत्मधर्म के आधार पर इसी माह से प्रारम्भ हो जाएगा। गुजराती में तो हिन्दी से पहिले से ही इसका प्रकाशन हो रहा है। इसप्रकार अब यह पत्र चार भाषाओं और लगभग पन्द्रह हजार प्रतियों में प्रति माह प्रकाशित होगा।

यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यह असीम स्नेह मुझे गुरुदेवश्री की अभूतपूर्व तत्त्व को प्रतिपादन करने वाली वाणी को सरल भाषा और सुबोध शैली में आप तक पहुँचाने के कारण ही मिला है। मैं तो गुरुदेवरूपी पारस को स्पर्श करने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ। मूल माल तो उन्हीं का है।

आत्मधर्म के प्रति मेरा सहज आकर्षण गत इक्कीस वर्षों से रहा है। सन् 1956 में जब सर्वप्रथम मुझे आत्मधर्म के क्रमबद्धपर्याय सम्बन्धी अंक प्राप्त हुए और मैंने उन्हें पढ़ा तो एकदम झंकृत हो उठा। उन्हें मैंने एक बार नहीं, अनेक बार पढ़ा। उनमें जो मुझे अभूतपूर्व वस्तु-तत्त्व मिला, उसने मेरा जीवन ही बदल डाला।

मैं ही नहीं मेरे अग्रज पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री भी आन्दोलित हो उठे। यद्यपि उस समय भी हम दोनों भाई शास्त्री-न्यायतीर्थ थे, जैन शास्त्रों का अध्ययन भी खूब किया था, प्रवचन भी करते थे; पर जिनवाणी का मूलतत्त्व हमारे हाथ नहीं लगा था। यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं है।

जब आत्मधर्म के माध्यम से क्रमबद्धपर्याय की बात हाथ आ गई तब से जिनागम के अध्ययन, मनन, चिन्तन की गति तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम हो गई। गुरुदेव से साक्षात् समागम भी हुआ। फलस्वरूप जीवनधारा ही बदल गई। आत्मधर्म ने हमारी जीवनधारा बदली है और न जाने कितने लोगों को भी इसीप्रकार इसने तत्त्व की ओर मोड़ा होगा। यही एकमात्र कारण रहा है आत्मधर्म के प्रति मेरे सहज आकर्षण का।

मैं चाहता हूँ कि आत्मधर्म असीम काल तक आत्मा की बात जन-जन तक पहुँचाता रहे और असंख्य प्राणी इसके माध्यम से भोगोन्मुखी वृत्ति को छोड़कर आत्मोन्मुखी बनते रहें।

इस वर्ष सामाजिक वातावरण में भी एक उफान आया था। उफान ही क्या, इसे यदि तूफान भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यद्यपि इस तूफान और अंधड़ का शिकार आत्मार्थी समाज ही अधिक हुआ, तथापि आत्मधर्म ने अपनी मर्यादा नहीं छोड़ी। वह इस भयंकर तूफान में भी मेरुवत् अडिग एवं सागरवत् गंभीर बना रहा।

जिनवाणी के जलप्रवाह, अग्निदाह, अपमान के विरुद्ध सैकड़ों अपीलें, प्रस्ताव आये। इन सबसे भी इसे अलग रखना कठिन काम था; क्योंकि वे सब हितैषियों द्वारा ही सम्प्रेषित थे। पर इस त्रैकालिक तत्त्व को प्रतिपादन करने वाली आध्यात्मिक पत्रिका को तात्कालिक विषयों में उलझाना उचित नहीं लगा। आन्तरिक दबावों को भी सहकर इसके त्रैकालिकरूप को सुरक्षित रखने में जिन बन्धुओं को कुछ असुविधा अनुभव हुई हो, उनसे भी क्षमाप्रार्थी हूँ।

सम्पादकीय लेखों के विषय चयन में भी पूरी सावधानी रखी है। उनके विषय सामाजिक न रखकर शुद्ध सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक रखे गये हैं। यद्यपि मेरा हृदय भी वर्तमान अशोभनीय घटनाओं से आन्दोलित रहा है, तथापि उसकी छाया भी इस पत्रिका पर नहीं पड़ने दी गई है।

मुझ हीन बुद्धि से इस महान पत्रिका के स्तर में कहीं कोई गिरावट न आ जाए इसकी सावधानी मुझे सदा रही है। गुरुदेवश्री के मंगल-प्रसाद से इस तूफान वर्ष में भी यह मर्यादा निभ गई है तो मुझे विश्वास हो चला है कि आगे भी निभ जाएगी।

इसके सम्पादन में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है कि त्रैकालिक तत्त्व का प्रतिपादन भी इसप्रकार से हो कि वर्तमान सामाजिक वातावरण में वह समस्त समाज को हितकारी एवं

शान्तिदायक रहे। इसमें मुझे कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय में शान्तिकामी सजग पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

बहुत से पाठकों के आग्रह रहे हैं कि बाल विभाग, महिला विभाग आदि स्तम्भ आरम्भ किए जाएँ। बहुतों ने यह भी चाहा है कि स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के लेख भी रहें, पर यह संभव नहीं रहा; क्योंकि सम्पादकीय, समाचार, आवश्यक सूचनाएँ आदि को छोड़कर गुरुदेव के प्रवचनों के 20-22 पृष्ठ ही रह पाते हैं। उनके उपदेशामृत को और कम करना किसी हालत में संभव नहीं है। यदि बाल स्तम्भ आदि प्रारम्भ किये जाते हैं तो वे अन्य लोगों से ही लिखाने होंगे या स्वयं लिखने होंगे, जो गुरुदेव की वाणी के पृष्ठों को और अधिक कम करेंगे।

कुछ पाठकों का आग्रह इसे कुछ मनोरंजक बनाने का भी रहा है। पर इस पत्रिका का सम्बन्ध स्वामीजी से जुड़ा हुआ है। उनके गुरु-गम्भीर व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए मुझे इसका गम्भीर तात्त्विकरूप ही उपादेय लगता है। इस पत्र में मैं एक शब्द भी ऐसा नहीं देना चाहता जो गुरुदेव की गरिमा को कम करे। आशा है, पाठकगण भी मेरी भावना से सहमत होंगे।

मर्यादा में रहते हुए इसे और जितना भी आकर्षक, सहज, सरल और लोकप्रिय बनाया जा सकेगा, बनाने का प्रयत्न सदा रहेगा।

यह सब मैंने आत्मधर्म मेरे पास आने के एक वर्ष बाद ही लिखा था।

आत्मधर्म जब सोनगढ़ पहुँचता, गुरुदेवश्री उसे आद्योपान्त पढ़ लेते थे। सम्पादकीय सबसे पहले पढ़ते थे। उस पर गुरुदेवश्री जो भी कमेन्ट्स करते, उपस्थित मुमुक्षु मुझे लिख भेजते थे। पूज्य गुरुदेवश्री के सत्समागम में मेरे मित्र अनेक लोग रहते थे। वे लोग मुझे सोनगढ़ के समाचार भेजते रहते थे, जिससे मुझे यह पता चलता रहता था कि मेरे बारे में लोग क्या सोचते हैं।

आदरणीय पण्डित खीमचन्दभाई जेठालाल सेठ लिखते हैं –

आत्मधर्म हिन्दी जुलाई का अंक प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री सुखशान्ति में विराज रहे हैं। उन्होंने पूरा अंक बाँच लिया है। अंक बहुत अच्छा निकला है – ऐसा कहकर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की है। दादर में जो चर्चा चली थी (इन्टरव्यू लिया था), वह भी पूरी बाँच ली है।

बाबू युगलकिशोरजी युगल लिखते हैं –

डॉ. साहब के सम्पादकत्व में आत्मधर्म का प्रथम अंक मिला। पूज्य गुरुदेव के इन्टरव्यू से डॉ. साहब का व्यक्तित्व जनमानस पर छा गया और भविष्य में आत्मधर्म के कायाकल्प का यह अंक नमूना-सा बन गया है; एतदर्थ अगणित बधाइयाँ।

बम्बई से श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल जवेरी, सोनगढ़ लिखते हैं –

मैंने हिन्दी आत्मधर्म के अंकों में छपे हुए लेख पढ़े। पढ़कर मैं प्रभावित हुआ। ये इन्टरव्यू बड़े प्रशंसनीय लेख हैं। जो सोनगढ़ के बारे में अनेक भ्रांतियाँ फैला रहे हैं, उनका यथोचित जवाब इन लेखों में आ गया है। आशा है आगे भ्रम फैलाने वाले रुकेंगे।

ललितपुर से पण्डित परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ लिखते हैं –

आपके द्वारा सुसम्पादित आत्मधर्म का जुलाई अंक देखा, मनोहर लगा। आद्योपान्त पढ़ भी गया हूँ। सचमुच ही आपने अब इसे पठनीय बनाया है। 30-31 वर्ष पूर्व सर्वप्रथम मैंने गुजराती आत्मधर्म का हिन्दी अनुवाद करना प्रारम्भ किया था, कई वर्ष तक करता रहा; किन्तु इतना सुरुचिपूर्ण सम्पादन कभी नहीं हुआ। आपने स्वामीजी का इन्टरव्यू देकर बहुत अच्छा काम किया। आप प्रतिमाह स्वामीजी का इन्टरव्यू लेकर समाज में व्याप्त ऐसी ही भ्रान्तियों का सुन्दरतापूर्वक निवारण करते रहें। यह बहुत उपयोगी और सर्वप्रिय काम होगा। ज्ञान-गोष्ठी जैसे प्रकरण भी चलते रहने चाहिए। अन्य लेख भी उपयोगी हैं। आपने आत्मधर्म

का कायाकल्प कर दिया है; एतदर्थ मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

सोलापुर से पद्मश्री ब्र. सुमतिबाईजी व विद्युल्लताजी लिखती हैं –

जुलाई, 1976 की आत्मधर्म पत्रिका खूब हार्दिक स्वागत तथा अभिनन्दन करने योग्य है। पढ़कर प्रसन्नता से दिल फूला न समाया। आप जैसे उद्भट विद्वान पर संस्कृति एवं धर्म का उज्ज्वल भविष्य निर्भर है। नयी शैली से इन्टरव्यू रोचक एवं लुभाने वाला है। सारे पत्र एक श्वास में मानो पढ़ने के लिए वाचक आतुर हो जाता है।

इम्फाल (मणिपुर) से श्री महाचन्दजी जैन लिखते हैं –

पूज्य स्वामीजी से आपके द्वारा लिया गया इन्टरव्यू अपने आप में एक घोषणा-पत्र है। आशा है सभी मुमुक्षुगण इससे शिक्षा लेंगे। स्वामीजी का यह कहना कि हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं यह तो उनके चैतन्य चमत्कार का ही फल है। कामना करता हूँ कि एक ऐसा आयोजन हो, जिसमें कि उनको इस वर्तमान अवस्था के अनुरूप श्रावकशिरोमणि जैसी पदवी से विभूषित किया जाए। वास्तव में उनको इस पदवी से विभूषित करना तो स्वयं इस पदवी का ही गौरव होगा।

जयपुर से पण्डित बंशीधरजी शास्त्री, एम. ए. लिखते हैं –

हिन्दी आत्मधर्म के जयपुर से प्रकाशित तीन अंक यथावसर पढ़े। अंकों के नव प्रकाशन से जहाँ सुन्दरता में वृद्धि हुई है, वहीं पठनीय सामग्री के प्रस्तुतीकरण में भी विशेष आकर्षक ढंग अपनाया गया है, इससे पाठक आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

प्रथम अंक में प्रकाशित चैतन्य चमत्कार एक इन्टरव्यू लेख श्रद्धेय कानजीस्वामी के सम्बन्ध में विरोधी भाइयों द्वारा प्रसारित भ्रम को दूर करने में सक्षम होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे इन्टरव्यू को बुलेटिन के रूप में अधिकाधिक प्रसारित करने की आवश्यकता है।

श्री कानजीस्वामी द्वारा कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पण्डित

बनारसीदासजी, पण्डित टोडरमलजी आदि महान आचार्यों एवं विद्वानों की वाणी का बहुत ही प्रशंसनीय प्रचार हो रहा है। आपके ऊपर इसका विशेष उत्तरदायित्व है। आशा है आप इसे अनुभव करेंगे।

कोलकाता से श्री रतनलालजी गंगवाल लिखते हैं –

सम्यग्ज्ञान दीपिका के सम्बन्ध में गुरुदेव का इन्टरव्यू देकर आपने समय पर एकदम सही काम किया है। इस समय इसकी बहुत आवश्यकता थी। इससे सम्यग्ज्ञान दीपिका और सोनगढ़ के सम्बन्ध में जानबूझ कर फैलाई गई अनेक भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। ऐसी चीजें हमेशा देते रहिए। गुरुदेव के प्रवचन भी बहुत अच्छे आ रहे हैं। इसके पहिले के अंकों में दिए गये उत्तम क्षमा सम्बन्धी लेख भी मार्मिक थे।

श्री प्रकाशचन्दजी हितैषी, सम्पादक : सन्मति संदेश लिखते हैं –

आत्मधर्म जीवंत ज्ञान–सूर्य बनकर जैन समाज के घर–घर में प्रकाश फैला रहा है। आपकी विलक्षण प्रतिभा और सूझ–बूझ से ही यह सम्भव हो सका है। अब उसे आद्योपान्त पढ़ना मुझे अनिवार्य हो गया है।

आपने सत्य की खोज (सन्मति सन्देश में मासिक किस्तों में प्रकाशित) के माध्यम से देव–गुरु–शास्त्र और धर्म की जो सरल परिभाषाएँ इस कथानक में स्पष्ट की हैं, उनकी तथा आपके इस श्लाघनीय सर्वोत्तम प्रयास की सभी पाठकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। आपकी प्रतिभाशाली तार्किक बुद्धि ने इस विज्ञान के युग में सत्यधर्म के प्रचार–प्रसार में जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए यह जैनसमाज आपका निरन्तर ऋणी रहेगा।

कवियित्री श्रीमती रूपवतीजी किरण, जबलपुर लिखती हैं –

आपके द्वारा सम्पादित आत्मधर्म के चार अंक क्रमशः पढ़ चुकी हूँ, हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपका सम्पादन कार्य अभिनन्दनीय है।

आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका के द्वारा सर्वसाधारण में फैली भ्रान्तियों का निराकरण होता रहेगा एवं समाज का हित होगा।

कोलकाता से श्री बाबूलाल सरावगी लिखते हैं –

आत्मधर्म हिन्दी आपके हाथ में आने से बहुत अच्छा धर्मप्रचार हो रहा है। प्रत्येक अंक को हम दो-तीन बार पढ़ते हैं, फिर भी मन नहीं भरता। पूज्य स्वामीजी ने बहुत उपकार किया है। सन्मति संदेश में आपके लेख सत्य की खोज पढ़कर प्रसन्नता हुई। ऐसे लेखों से लोगों का भ्रम मिट सकता है।

इन्दौर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. देवेन्द्रकुमारजी लिखते हैं –

पत्र की प्रकाशन व्यवस्था का नियमन प्रशंसनीय है। जहाँ तक वस्तु-विषय का सम्बन्ध है, वह विशेष दृष्टिकोण से सम्बद्ध है और यह दृष्टिकोण ऐसा है कि जो मनुष्य को व्यावहारिक जीवन में उदार और सहिष्णु बना सकता है। मुझे विश्वास है कि आत्मधर्म इस दृष्टि से लोगों को व्यापक समझ देगा।

पूना से डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी, एम.ए., बी.एड. लिखते हैं –

अब आत्मधर्म में पाठकों का आकर्षण अत्यधिक बढ़ गया है। उसका मूल कारण है गुरुदेव की अनमोल वाणी के साथ-साथ सम्पादकीय लेखों की गम्भीरता एवं मौलिकता। दूसरा यदा-कदा प्रकाशित होने वाले इन्टरव्यू वगैरह, क्षमा, मार्दव आदि पर मौलिक विचार पढ़े तो काफी आनन्द आया।

भावनगर (गुजरात) से श्री हीरालालजी लिखते हैं –

जनवरी आत्मधर्म में आपने एक आत्मा का ही ध्यान कर लेख में ब्र. रायमलजी का चर्चा-संग्रह में से जो हू-ब-हू उनकी भाषा में ही लेख दिया है, वह अति उत्तम प्रयास है। आत्मधर्म में हर माह ऐसे ही पुराने साधर्मी भाइयों के लेख देवें तो इसकी रोचकता और बढ़ेगी एवं मुमुक्षुओं को प्रेरणादायक निज-हित की सामग्री मिलती रहेगी। ●

अधूरी उल्टी आत्मकथा

आठवाँ अध्याय

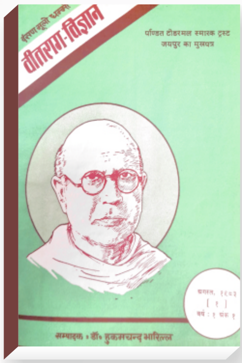

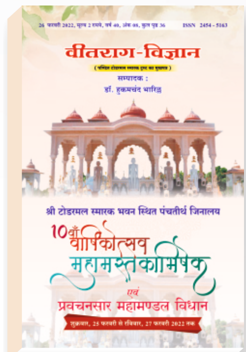

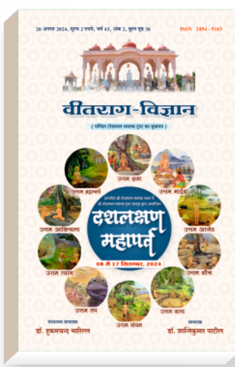

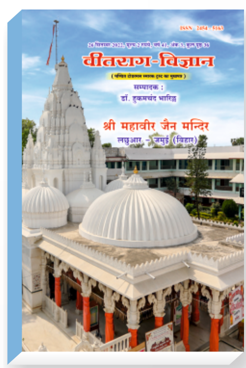

वीतराग-विज्ञान

(पत्रिका)

पूज्य गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के उपरान्त जो उथल-पुथल हुई, उसकी आँधी में आत्मधर्म (हिन्दी) भी मेरे हाथों में सुरक्षित नहीं रह सका। मैंने भी हिम्मत नहीं हारी; परिणामतः वीतराग-विज्ञान का जन्म हुआ। वीतराग विज्ञान के पहले ही अंक में मैंने हर पेज पर लिखा था कि वीतराग-विज्ञान आत्मधर्म का ही नया नाम है।

उस समय सबको ऐसा लगा था कि सोनगढ़ दो भागों में बँट गया है; पर ऐसा नहीं हुआ और आज भी हम सब एक हैं। पूज्य गुरुदेवश्री ने जो तत्त्वज्ञान हम सबको दिया है; वह इतना महान है कि उसके दम पर हम सब सदा एक बने रह सकते हैं।

टूटते तो व्यक्ति हैं और वे समय बीतने पर समाप्त हो जाते हैं। उनके मतभेद उनके साथ ही चले जाते हैं और मूल तत्त्वज्ञान कायम रहता है।

सोनगढ़ मिशन मूल तत्त्वज्ञान का नाम है, जो सदा कायम ही रहता है।

वीतराग-विज्ञान (पत्रिका)

पूज्य गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के उपरान्त जो उथल-पुथल हुई, उसकी आँधी में आत्मधर्म (हिन्दी) भी मेरे हाथों में सुरक्षित नहीं रह सका। मैंने भी हिम्मत नहीं हारी; परिणामतः वीतराग-विज्ञान का जन्म हुआ। पहले ही अंक में मैंने हर पेज पर लिखा था कि 'वीतराग-विज्ञान आत्मधर्म का ही नया नाम है।' इसमें आपको वह सब प्राप्त होगा, जो विगत दिनों में आत्मधर्म (हिन्दी) में प्राप्त होता रहा।

यह सब आज तक निभ रहा है। उसे चलते हुये भी आज 40 वर्ष हो गये हैं। वीतराग-विज्ञान ने भी हमें गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अलावा सम्पादकीय के रूप में अनेक महान कृतियाँ दी हैं।

यद्यपि वीतराग-विज्ञान ने मेरे द्वारा सम्पादित आत्मधर्म की क्षतिपूर्ति कर दी है; तथापि हिन्दी आत्मधर्म भी निकल रहा है; उसकी कैसी क्या स्थिति है? इसका विशेष ज्ञान मुझे नहीं है।

वीतराग-विज्ञान के पहले सम्पादकीय में ही मैंने लिखा कि -

वीतराग-विज्ञान आत्मधर्म का ही नया नाम है। वीतराग-विज्ञान की जन्मकथा से आत्मधर्म के पाठक अपरिचित नहीं हैं। इसकी स्थिति आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की राजसभा में नृत्य करनेवाली देवांगना नीलांजना के समान ही है।

जिसप्रकार नीलांजना के असमय में काल-कवलित हो जाने पर इन्द्र ने उसी के समान अन्य देवांगना को अविराम उपस्थित कर सभा

का रसभंग नहीं होने दिया था, उसी प्रकार आत्मधर्म (हिन्दी) के अवसान पर ठीक उसी के समान सामग्री प्रस्तुत करनेवाला आध्यात्मिक-पत्र अविराम प्रस्तुत कर आत्मधर्म के अध्यात्मप्रेमी पाठकों के अध्यात्मरस में भंग न पड़ने देने का पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा किया गया यह प्रयास ही 'वीतराग-विज्ञान' है।

अतः आत्मार्थी पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि इसे नवीन आध्यात्मिक मासिक के रूप में न देखकर आत्मधर्म के उत्तराधिकारी के रूप में ही देखें; क्योंकि इसमें जो सामग्री प्रस्तुत की जा रही है, वह सब आत्मधर्म में क्रमशः प्रकाशित होनेवाली सामग्री के आगे की सामग्री ही है। नियमसार प्रवचन एवं द्रव्यसंग्रह प्रवचन जैसे स्थाई स्तम्भ इसीप्रकार के स्तम्भ हैं, जिन्हें आत्मधर्म से पृथक् करके देखना सम्भव नहीं है। इसके स्तर के सम्बन्ध में भी इसी बात को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

यद्यपि इसका सम्पूर्ण कलेवर आत्मधर्म के समान ही रहना है, तथापि हम अपनी मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए इसे और भी अधिक उपयोगी एवं आकर्षक बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। इसमें हमें कितनी क्या सफलता मिलती है, यह सब अभी भविष्य के गर्भ में है, अतः इसके सम्बन्ध में कुछ भी कहना न तो उचित ही है और न ही आवश्यक ।

जिसप्रकार नृत्यांगना के परिवर्तन की बात सामान्य दर्शकों के तो ध्यान में ही न आ पाई थी, अतः उन्हें तो कोई अन्तर ही न पड़ा था, पर ऋषभदेव जैसे सूक्ष्मदर्शियों को यह घटना वैराग्योत्पादक ही सिद्ध हुई थी। उसीप्रकार विषयवस्तु एवं आकार-प्रकार में आत्मधर्म और वीतराग-विज्ञान के एक जैसे ही होने के कारण सामान्य पाठकों को तो विशेष अन्तर पड़ेगा ही नहीं, पर सूक्ष्मदर्शियों को भी यह परिवर्तन राग-द्वेष का उत्पादक न होकर वैराग्योत्पादक ही होगा।

निकट विगत में जैसा जो कुछ घटित हुआ है, वह हमें भले ही अद्भुत लगे, पर सर्वज्ञ के ज्ञान में तो हाथ पर रखे आँवले के समान पहले से ही सब–कुछ स्पष्ट था। सर्वज्ञता एवं क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त को सामने रखकर जब गम्भीरता से विचार करते हैं, तो सहज साम्यभाव की ही उत्पत्ति होती है।

आत्मधर्म का विकट विरह एवं तत्काल वीतराग–विज्ञान की मंगलमय सहज उपलब्धि ने हँसने और रोने दोनों को प्रतिबन्धित कर दिया है। अब न हँसते ही बनता है और न रोते ही, सहज वीतरागभाव ही उत्पन्न होता है।

अतः हमारे जागृत विवेक को यही उचित प्रतीत हुआ कि विकल्पों को विगत में लम्बाने की अपेक्षा वर्तमान में जागृत होना ही श्रेयस्कर है। गुरुदेवश्री द्वारा प्रदत्त सारभूत तत्त्व जब साथ है, उसे जन–जन तक पहुँचाने का प्रबल संकल्प हृदय में विद्यमान है, तो समर्थ साधनों की उपलब्धि भी सहज होनी ही थी।

आत्मधर्म का जाना और अविराम वीतराग–विज्ञान का आना क्या यह इस बात का सूचक नहीं है कि गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा आरम्भ प्रभावनायोग अभी समाप्त नहीं हुआ है, सौभाग्य की शक्तियाँ अभी भी प्रबल ही हैं; क्योंकि रणांगण में रथ के भग्न हो जाने पर तत्काल उसके समान रथ की सहज उपलब्धि सफल सद्भाग्य के बिना सम्भव नहीं है।

आत्मधर्म के बाद इससे बढ़िया किसी अन्य नाम की हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

'वीतराग–विज्ञान' नाम की उपलब्धि स्वयं मंगलस्वरूप है, मंगलमय है, मंगलकरण है। आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी अपने मौलिक ग्रन्थ मोक्षमार्गप्रकाशक के मंगलाचरण में वीतराग–विज्ञान को नमस्कार करते हुए लिखते हैं –

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग–विज्ञान।
नमो ताहि जातें भये, अरहंतादि महान।।

जिस वीतराग–विज्ञान को पण्डित टोडरमलजी स्वयं अरहंतादि पदों की प्राप्ति का कारण बताते हों, पंचपरमेष्ठी से भी पहले नमस्कार करते हों तथा मंगलमय और मंगलकरण निरूपित करते हों; उनकी ही स्मृति में निर्मित पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के मुखपत्र का नाम भी वीतराग–विज्ञान स्वीकृत हो जाना मंगल भविष्य का द्योतक क्यों न हो?

आत्मधर्म के बाद इससे बढ़िया किसी अन्य नाम की हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

यद्यपि यह बात सत्य है कि आत्मधर्म के बाद यह नाम हमें सहज सर्वाधिक प्रिय था, हमने इस नाम को सर्वोच्च प्राथमिकता भी दी थी; तथापि एकबार तो हमारे चाहे सभी नाम भारत सरकार से अस्वीकृत होकर आ गये थे तथा हमसे दूसरे नाम देने के लिए कहा गया था। अतः इस नाम की प्राप्ति की सम्भावना समाप्तप्रायः ही थी, फिर भी दूसरी बार अनेक अन्य नाम देने पर भी हमें यह नाम सम्भावना के विरुद्ध सहज ही प्राप्त हो गया।

इसके लिए हमने कोई प्रयत्न भी नहीं किया, फिर भी यह स्वीकृत हुआ; अतः मंगल भविष्य की सूचकता असंदिग्ध ही समझना चाहिए।

हमें यह नाम सर्वाधिक प्रिय रहा है, इसके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमने तो परीक्षा बोर्ड का नाम श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, पाठ्य–पुस्तकों का नाम वीतराग–विज्ञान पाठमाला, पाठशालाओं का नाम वीतराग–विज्ञान पाठशाला, समिति का नाम भारतवर्षीय वीतराग–विज्ञान पाठशाला समिति, शिविरों का नाम श्री वीतराग–विज्ञान शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर, प्रशिक्षण निर्देशिका का नाम वीतराग–विज्ञान प्रशिक्षण

निर्देशिका; यहाँ तक कि निर्माणाधीन आत्मार्थी निवास का नाम भी श्री वीतराग-विज्ञान भवन रखा है। उक्त कड़ी में यह आध्यात्मिक पत्रिका 'वीतराग-विज्ञान' आठवाँ नाम है।

उक्त सात नाम रखने में तो हम पूर्ण स्वतंत्र थे, इन नामों के लिए किसी से स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक नहीं था, अतः ये नाम तो मात्र हमारी रुचि के ही परिचायक हैं; किन्तु पत्रिका का नाम चुनना पूर्णतः हमारे हाथ में नहीं था। अतः बिना यत्न के इस नाम की उपलब्धि रुचि के साथ-साथ सद्भाग्य की भी सूचक है ही।

'आत्मधर्म' और 'वीतराग-विज्ञान' शब्द लगभग एकार्थवाची ही हैं, क्योंकि आत्मा का धर्म वस्तुतः वीतराग-विज्ञान ही है। मैंने तो आज से बारह वर्ष पूर्व प्रकाशित वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका के मंगलाचरण में ही लिखा है –

वीतराग-विज्ञानमय, स्वातम का धरि ध्यान।
बने, बनेंगे, बन रहे, वीतराग भगवान।।

आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान।
विश्वशान्ति का मूल है, वीतराग-विज्ञान।।

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रचार।।

वीतराग-विज्ञान को घर-घर पहुँचाने वाली पत्रिका का नाम भी 'वीतराग-विज्ञान' क्यों न हो?

वीतराग-विज्ञान आत्मस्वरूप ही है, अतः आत्मधर्म ही है।

आत्मस्वरूप होने से वीतराग-विज्ञान पंच परमेष्ठी से भी महान है। वीतराग-विज्ञान स्वयं पूज्य है; जबकि पंच परमेष्ठी की पूज्यता वीतराग-विज्ञानमय होने के कारण है। पंच परमेष्ठी में पूज्यत्व सिद्ध करते हुए पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं –

"इसप्रकार इन अरहंतादिक का स्वरूप है, सो वीतराग-विज्ञानमय है। उस ही के द्वारा अरहंतादिक स्तुतियोग्य महान हुए हैं; क्योंकि जीवतत्त्व की अपेक्षा तो सर्व जीव ही समान हैं, परन्तु रागादि विकारों से व ज्ञान की हीनता से तो जीव निन्दायोग्य होते हैं और रागादिक की हीनता और ज्ञान की विशेषता से स्तुतियोग्य होते हैं। सो अरहंत-सिद्धों के तो सम्पूर्ण रागादिक की हीनता और ज्ञान की विशेषता होने से सम्पूर्ण वीतराग-विज्ञानभाव सम्भव है और आचार्य, उपाध्याय तथा साधुओं को एकदेश रागादिक की हीनता और ज्ञान की विशेषता होने से एकदेश वीतराग-विज्ञान सम्भव है। इसलिए उन अरहंतादिक को स्तुति योग्य महान जानना।"[1]

वीतराग-विज्ञान ध्येय भी है, साध्य भी है और साधन भी है। वीतराग-विज्ञान आत्मा का धर्म अर्थात् स्वभाव होने से ध्येय है, पूर्ण वीतरागता एवं सर्वज्ञतारूप होने से साध्य एवं एकदेश वीतरागता व सम्यग्ज्ञानमय होने से साधन है। 'वीतराग-विज्ञान' शब्द का प्रयोग ध्येयरूप त्रिकाली ध्रुव के अर्थ में भी होता है और उसके आश्रय में उत्पन्न रत्नत्रय के अर्थ में भी होता है। इसीप्रकार आत्मधर्म शब्द का प्रयोग भी दोनों ही में पाया जाता है।

अतः यह कहना सत्यार्थ ही है कि आत्मधर्म ही वीतराग-विज्ञान है और वीतराग-विज्ञान ही आत्मधर्म है।

हमारी तत्त्वप्रचार सम्बन्धी गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों में वीतराग-विज्ञान नाम देखकर कुछ लोग यह भी कहते सुने जाते हैं कि यह विज्ञान का युग है; क्योंकि आज सर्वत्र आधुनिक विज्ञान का ही बोलबाला है; अतः हमने भी युग के प्रभाव में धार्मिक गतिविधियों के साथ वीतराग-विज्ञान नाम जोड़ लिया है।

हमारे इस चयन में जिन्हें आधुनिक विज्ञान की गंध आती है, उनसे

1. मोक्षमार्ग प्रकाशक : पहला अधिकार, पृष्ठ 04

हम कहना चाहते हैं कि वीतराग-विज्ञान शब्द का प्रयोग आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने आज से 220 वर्ष पूर्व तब किया है, जब एकप्रकार से आधुनिक विज्ञान का जन्म भी नहीं हुआ था। हमारी प्रेरणा का आधार आधुनिक विज्ञान न होकर वीतराग-विज्ञान का प्रतिपादक जिनागम है; अथवा आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी हैं, जिन्होंने उसे मोक्षमार्ग प्रकाशक में सर्वप्रथम नमस्कार किया है तथा पंचपरमेष्ठी में पूज्यत्व का कारण भी उसे ही बताया है। यह सब मैंने वीतराग-विज्ञान के पहले सम्पादकीय में लिखा था।

उस समय सबको ऐसा लगा था कि सोनगढ़ दो भागों में बँट गया है; पर ऐसा नहीं हुआ और आज भी हम सब एक हैं। पूज्य गुरुदेवश्री ने जो तत्त्वज्ञान हम सबको दिया है; वह इतना महान है कि उसके दम पर हम सब सदा एक बने रह सकते हैं।

टूटते तो व्यक्ति हैं और वे समय बीतने पर समाप्त हो जाते हैं। उनके मतभेद उनके साथ ही चले जाते हैं और मूल तत्त्वज्ञान कायम रहता है।

सोनगढ़ मिशन मूल तत्त्वज्ञान का नाम है, जो सदा कायम ही रहता है। गुरुदेवश्री भी एक सुनिश्चित मूल तत्त्वज्ञान का ही नाम है और वह सदा कायम रहने वाला है। वह जिसके पास है; वह सदा जिन्दा रहने वाला है, शाश्वत है। वह हमारे पास है; अतः हम निरंतर हैं और निरंतर रहेंगे।

सोनगढ़ जगह का नाम नहीं, एक विचारधारा का नाम है; वह है और रहेगा, वह अमर है और उस पर समर्पित हम सब भी अमर हैं।

हमारे साथी भी बहुत चले गये हैं और निरन्तर जा रहे हैं। हम भी एक दिन चले जाएँगे; पर हम से जो वीतरागी तत्त्वज्ञान की, तत्सम्बन्धी साहित्य की सेवा बन सकी है, वह अमर है; क्योंकि वह अमर तत्त्व के प्रतिपादन के लिये समर्पित है।

हमें इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि हमें बचपन में जैन तत्त्वज्ञान पढ़ने और पढ़ाने का अवसर मिला और यौवन के आरंभ में ही पूज्य

गुरुदेवश्री का सत्समागम प्राप्त हो जाने से जैनदर्शन का मूल तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया और उस पर जीवन समर्पित करने का भाव जग गया। जीवन भी लम्बा मिल गया, 87 वर्ष के तो हो ही गये हैं।

अभी तक तो दिल और दिमाग दोनों ही पूरी तरह दुरुस्त हैं, चौबीसों घंटे इसी में लगे हुये हैं। इससे भिन्न कुछ करने का विकल्प नहीं है। एकदम सहज हो गये हैं, एकदम सहज ज्ञाता-दृष्टा निर्विकल्प। बाहर में भी सब सहज अनुकूलता है। स्त्री-पुत्रादि भी अनुकूल हैं। साधर्मियों का सहज सत्समागम है। शिष्य वर्ग भी सब अनुकूल है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि हम स्वयं सहज हैं; सहज स्वभाव और सहज परिणमन में एकदम सहज हैं। 'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे' में बात अकेले जीवन-मरण की नहीं है, जन्म से मरण तक के सभी सहज परिणमन, सहज भाव से स्वीकृत हैं।

जब सबकुछ सहज है, सभी परिणमन भी सहज नक्की हैं, यह सब सत्य सहज भाव से सहज स्वीकृत है तो अब शेष ही क्या रह गया है?

भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर तक सभी तीर्थंकर जब सबकुछ छोड़कर, एकदम नग्न दिगम्बर होकर वनवासी हो गये थे, मन-वचन-काय की चेष्टा के प्रति अत्यन्त उदास हो गये थे; तब वे जंगल में क्या कर रहे थे? एकदम शान्त निराकुल अन्तर्मग्न ही तो थे। न कुछ कर रहे थे, न बोल रहे थे और न कुछ सोच ही रहे थे। वे इन सबको बन्द करने के उपक्रम में भी नहीं थे। अनेकों वर्षों तक उक्त स्थिति में ही थे, उन्होंने ऐसी अवस्था में ही केवलज्ञान की प्राप्ति की थी, अनन्त आनन्द की प्राप्ति की थी; मानो इन सब आडम्बरों से मुक्त ही हो गये थे।

मैं उन जैसा शान्त निराकुल क्यों नहीं हो रहा? ये विकल्प के जाल क्यों उलझते रहते हैं? रहते हैं तो रहें, मुझे इनसे क्या है? मैं तो मैं हूँ, स्वयं मैं हूँ; स्वयं हूँ - इसप्रकार के चिन्तन से क्या है? मुझे तो स्वयं में ही जाना है, स्वयं में ही समा जाना है। ●

नौवाँ अध्याय

छात्रावास एवं पाठशालाएँ

"तात्कालिक प्रयोजन से आरम्भ किया छात्रावास तो अधिक काल नहीं चल सका और वह एक-दो वर्ष में ही विघटित हो गया। मैं जैनदर्शन के ठोस विद्वान तैयार करने के लिये जो महाविद्यालय खोलना चाहता था, पर इस घटना से वह महाविद्यालय दस साल पिछड़ गया। मैं जब भी बात करता तो कोई तैयार ही नहीं होता। सब यही कहते हमें छात्रों का झगड़ा नहीं पालना। आप तो और जो कुछ करना हो करो, परन्तु यह बात मत करो।"

"अक्टूबर 1967 में जयपुर में ही पाठमालाएँ लिखना आरम्भ कर दी थीं। मैं जितनी पाठ्य सामग्री तैयार करता, उसे लेकर मैं, पाटनीजी, गोदीकाजी, सेठीजी एवं बाबूभाईजी सभी मिलकर सोनगढ़ जाते और सोनगढ़ के सभी विद्वानों के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री को सुनाते। उक्त सामग्री पर खूब चर्चा होती। सबकुछ मिलाकर जब वह सामग्री पास हो जाती तो उसे पुस्तकाकार पाठमालाओं के रूप में छपाते। इसप्रकार ये पाठमालायें गुरुदेवश्री एवं अनेक विद्वानों के सहयोग से तैयार हुई हैं।"

नौवाँ अध्याय

9

छात्रावास एवं पाठशालाएँ

जयपुर आने के बाद मैंने दो प्रकार से कार्य आरम्भ किया। एक तो ऐसे कार्य, जिन से कार्य होता दिखे, तत्काल लाभ हो। जैसे- विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले जैन छात्रों के लिये छात्रावास। छात्रावास में रहने वाले छात्रों को धार्मिक संस्कार देना, सामान्य तत्त्वज्ञान कराना एवं जैनाचार का सामान्य ज्ञान कराना।

दूसरे वे ठोस कार्य, भले ही जिनका फल तत्काल प्राप्त न हो; पर जैन तत्त्वज्ञान का गहराई से प्रचार-प्रसार हो। इसके लिये जैनदर्शन के सामान्य ज्ञान के लिये पाठ्यक्रम तैयार करना, तदनुकूल पाठ्य पुस्तकें तैयार करना, गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोलना, उनमें वह पाठ्यक्रम पढ़ाना, उनकी परीक्षा लेना, छात्रों को उचित प्रमाण-पत्र देना इत्यादि।

ये सब कार्य तो करने ही थे, समाज में उन्हें लागू करवाना, इसके लिये समाज को तैयार करना, गाँव-गाँव में शिविर लगाना। उन शिविरों में जाना, वहाँ पढ़ाना, पढ़ाना सिखाना, एतदर्थ प्रशिक्षण शिविर लगाना।

अत्यंत रोचक तरीके से यह कार्य करना, कराना; जिससे समाज की नब्ज पकड़ी जा सके। इसके लिये योजनाएँ बनाना, उन योजनाओं को युवकों के माध्यम से समाज तक पहुँचाना। संस्था के पदाधिकारियों को इसके लिये तैयार करना, समाज में सहयोगी तैयार करना। गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोलना। छात्रों को आकर्षित कर पाठशाला में बुलाना आदि अनेक कार्यों की योजना बनाकर उन्हें कार्यान्वित करना।

ये सब ऐसे कार्य थे कि जिनमें बहुत श्रम लगता है; लोगों को तैयार करना आसान काम नहीं है। अन्दर-बाहर के बहुत विरोध का सामना करना पड़ता है – ऐसी नीतियाँ तैयार करना कि जिससे विरोध का सामना न करना पड़े। तदर्थ सहिष्णु होना अत्यन्त आवश्यक है।

विवादित विषयों से संबंधित सत्साहित्य तैयार करना, उसे प्रकाशित करना तथा उसे जन-जन तक पहुँचाने की व्यवस्था जुटाना। यह सब करने के लिये अपने परिकर में इसके अनुकूल वातावरण बनाना, जिससे यह कार्य निर्विरोधरूप से संचालित किया जा सके। यह सब भी सहज भाव से ही संचालित हुआ और आज हम इस स्थिति में पहुँच गये हैं। इस काल में यह सब इसप्रकार होगा, उसमें हम इसप्रकार समाहित होंगे यह सब भी पूर्व सुनिश्चित ही था और सभी केवलियों के ज्ञान में आ गया था, झलक रहा था।

तात्कालिक प्रयोजन से आरम्भ किया छात्रावास तो अधिक काल नहीं चल सका और वह एक-दो वर्ष में ही विघटित हो गया।

हमारा काम समाज के सामने आये, विद्वानों के सामने आये और उनकी अनुकूलता बनाई जा सके; तदर्थ हमने विद्वत्परिषद् की होने वाली वार्षिक मीटिंग अपनी संस्था श्री टोडरमल स्मारक भवन में करने का आग्रह किया और उसके लिये सब प्रकार की सुविधायें जुटाने का आश्वासन दिया। अन्ततः विद्वत्परिषद् की मीटिंग होना तय हो गया। समय पर बहुत अच्छी मीटिंग हुई। तीन दिन का कार्यक्रम था। उस समय उक्त विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष डॉ. नेमिचन्द्रजी 'ज्योतिषाचार्य' थे। आज उक्त विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष मैं स्वयं हूँ।

यद्यपि संस्था का कार्य देखकर सभी विद्वान बहुत प्रभावित हो रहे थे, पर कुछ कलहप्रिय विद्वान छात्रों में प्रविष्ट हो, उन्हें भड़काने में व्यस्त थे।

दूसरे दिन सभी विद्वानों का भोजन गोदीकाजी के यहाँ था।

गोदीकाजी छात्रावास के छात्रों को भी घर ही बुलाना चाहते थे; परन्तु घर पर इतनी जगह नहीं थी। अतः उन्होंने छात्रों का भोजन स्मारक में ही रखा। सारा भोजन वही था, गोदीकाजी के घर से ही आया था, मात्र यहाँ तो परोसा जाना था।

यह मुद्दा पाकर उक्त कलहप्रिय विद्वानों ने छात्रों को भड़का दिया कि आपको गोदीकाजी ने अपने घर पर नहीं बुलाया और बचा-खुचा भोजन यहाँ भेज दिया, यह आपका अपमान है। अतः आपको इस भोजन का बहिष्कार करना चाहिये। भोले-भाले छात्र उनके भड़काने में आ गये और उन्होंने भोजन का बहिष्कार कर दिया, हड़ताल पर उतर आये। इससे सारा वातावरण विषाक्त हो गया। इतना बढ़िया चल रहा कार्यक्रम एकदम विघटित हो गया। कार्यक्रम तो किसी तरह पूरा हो गया; परन्तु जो अनुकूल वातावरण बन रहा था, उस वातावरण से सबका रस समाप्त हो गया। उक्त घटना से गोदीकाजी बहुत नाराज हो गये और सभी छात्रों को निकालने की बात करने लगे।

आ. बाबूभाईजी बोले – ''डॉ. साहब! आपको जिन छात्रों की मदद करनी हो, उन्हें छात्रवृत्ति दे दीजिये, यह झंझट अपने पास न रखें।''

गोदीकाजी छात्रावास को तत्काल समाप्त करने के लिये अड़ गये।

मैंने कहा – ''अब दो-तीन महीने ही रह गये हैं। अतः अभी चलने दें। अगले साल अपन भर्ती ही नहीं करेंगे।''

इसप्रकार वह छात्रावास समाप्त हो गया।

मैं जैनदर्शन के ठोस विद्वान तैयार करने के लिये जो महाविद्यालय खोलना चाहता था, पर इस घटना से वह महाविद्यालय दस साल पिछड़ गया। मैं जब भी बात करता तो कोई तैयार ही नहीं होता। सब यही कहते कि हमें छात्रों का झगड़ा नहीं पालना। आप तो और जो कुछ करना हो करो, परन्तु यह बात मत करो।

बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे वातावरण बनाया तो उसमें दस साल लग गये। आखिर वह महाविद्यालय 1977 में खुल पाया।

अक्टूबर 1967 में जयपुर में ही पाठमालाएँ लिखना आरम्भ कर दी थीं। मैं जितनी पाठ्य सामग्री तैयार करता, उसे लेकर मैं, पाटनीजी, गोदीकाजी, सेठीजी एवं बाबूभाईजी सभी मिलकर सोनगढ़ जाते और सोनगढ़ के सभी विद्वानों के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री को सुनाते। उक्त सामग्री पर खूब चर्चा होती। सबकुछ मिलाकर जब वह सामग्री पास हो जाती तो उसे पुस्तकाकार पाठमालाओं के रूप में छपाते। इसप्रकार ये पाठमालायें गुरुदेवश्री एवं अनेक विद्वानों के सहयोग से तैयार हुई हैं।

यद्यपि अधिकांश सामग्री मैंने ही तैयार की है; तथापि सबका भी उक्त रूप में सहयोग तो प्राप्त हुआ ही है।

पूज्य गुरुदेव के साथ सर्वश्री रामजीभाई दोशी, हिम्मतभाई शाह, खीमचंदभाई शेठ आदि विद्वान भी बैठते थे।

जब अधिकांश पाठमालाएँ तैयार हो गयीं तो उनको पढ़ाने के लिये स्थान-स्थान पर पाठशालाएँ खोलीं, उनमें पढ़ाने के लिये अध्यापकों की व्यवस्था की, पाठशालाओं में परीक्षा लेने के लिये परीक्षा बोर्ड बनाया। सबसे पहले सन् 1968 में, नौ पाठशालाओं से 579 छात्र परीक्षा में शामिल हुए। अधिकांश पाठशालाएँ जयपुर और विदिशा में थीं; क्योंकि जयपुर में मैं और विदिशा में बड़े दादा पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल रहते थे।

अभी पूरे देश में 143 पाठशालाएँ संचालित हो रही हैं, जिनमें 4 लाख 44 हजार 5 सौ 74 छात्र परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रमाण-पत्र प्राप्त कर चुके हैं। परीक्षा बोर्ड का नाम श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड है और टोडरमल स्मारक भवन में ही उसका कार्यालय है। ●

दसवाँ अध्याय

प्रशिक्षण शिविर

“अब तक लगे 54 प्रशिक्षण शिविरों में मेरी उपस्थिति आदि से अन्त तक रही है। पाटनीजी तो शिविर की सम्पूर्ण व्यवस्था सम्भालते ही थे; गोदीकाजी भी अनेक शिविरों में पधारते थे और आदि से अन्त तक रहते थे। शिविर में दोनों समय प्रवचन तो होते थे। एक प्रवचन तो मैं स्वयं करता और अन्य प्रवचन श्री खीमचन्दभाई शेठ, श्री बाबूभाई मेहता, बाबू श्री युगलकिशोरजी, श्री लालचन्दभाई मोदी, श्री फूलचन्दजी शास्त्री आदि विद्वानों के होते थे।”

“1971 के बीस दिन के इस तीसरे शिविर में पूज्य गुरुदेवश्री पधारे थे। ...लगातार 20 दिन तक जयपुर शिविर में रहे थे, पूरी रुचिपूर्वक सभी कक्षाओं को देखते थे, कक्षा में आदि से अन्त तक बैठते थे। कनोडिया कॉलेज की कक्षा के रूम में लग रही मेरी कक्षा में गुरुदेवश्री आदि से अन्त तक बैठे थे। उनके सामने नमूने के रूप में परमात्मप्रकाश से पढ़वाया था, गुरुदेवश्री बहुत प्रसन्न हुये थे, उसकी चर्चा भी अपने प्रवचनों में करते थे।”

प्रशिक्षण शिविर

परीक्षा की कापियाँ देखकर ऐसा लगा कि अध्यापकों को प्रशिक्षित करना चाहिये ; तदर्थ प्रशिक्षण शिविर लगाने आरम्भ किये।

सबसे पहले 20 दिन का श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में लगा। इसमें पढ़ाने वाले हम दोनों भाई थे और पढ़ने के लिये बाहर व जयपुर के सब मिलाकर 25 छात्र-अध्यापक शामिल हुये थे।

उक्त शिविर से प्रशिक्षण शिविर की एक रूपरेखा प्रस्तुत हो गई और सहयोगियों की समझ में आ गया कि यह करने योग्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यक कार्य है।

20 दिन का दूसरा शिविर विदिशा में और तीसरा शिविर फिर जयपुर में लगा। सन् 1971 के बीस दिन के इस तीसरे शिविर में पूज्य गुरुदेवश्री पधारे थे। प्रवचन का लाभ लेने वालों की संख्या 2500 थी ; पर प्रशिक्षण लेने वालों की संख्या 142 थी। पूज्य गुरुदेवश्री लगातार 20 दिन तक जयपुर शिविर में रहे थे, पूरी रुचिपूर्वक सभी कक्षाओं को देखते थे, कक्षा में आदि से अन्त तक बैठते थे।

कनोडिया कॉलेज की कक्षा के रूम में लग रही मेरी कक्षा में गुरुदेवश्री आदि से अन्त तक बैठे थे। उनके सामने नमूने के रूप में परमात्मप्रकाश से पढ़वाया था, गुरुदेवश्री बहुत प्रसन्न हुये थे, उसकी चर्चा भी अपने प्रवचनों में करते थे।

इस शिविर तक प्रशिक्षण की पुस्तक भी तैयार हो गई थी। वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका नाम से छपकर आ गई थी और उसका विमोचन पूज्य गुरुदेवश्री के हाथों से हुआ था।

इसके बाद पूज्य गुरुदेवश्री दिनांक 18 मई से 6 जून, 1975 तक कोटा में लगने वाले प्रशिक्षण शिविर में 8 दिन के लिये और दिनांक 22 मई से 11 जून, 1978 तक उदयपुर में लगने वाले शिविर में 3 दिन के लिये पधारे थे। हमारे इस कार्य से वे बहुत प्रसन्न थे।

सन् 1977 में गुजरात प्रान्तिज में लगने वाले प्रशिक्षण शिविर में महाविद्यालय के प्रथम सत्र में 10 छात्रों का प्रवेश हुआ था। 3 छात्र गुरुदेवश्री ने सोनगढ़ से भिजवाये थे, जिनमें ब्र. जतीशभाई भी थे। प्रान्तिज शिविर में उद्घाटन के लिये साहू शान्तिप्रसादजी पधारे थे।

विशाल सभा में मेरा अहिंसा : भगवान महावीर की दृष्टि में विषय पर प्रवचन हो रहा था। बगल में बैठे साहूजी बीच-बीच में बार-बार टोकते थे। बहुत देर तो मैंने बरदाश्त किया, आखिर अन्त में मुझसे नहीं रहा गया और मैंने उनसे कहा कि आप शान्ति से बैठकर सुन भी नहीं सकते ?

एकदम सन्नाटा छा गया और वे भी चुप हो गये। मेरा प्रवचन चलता रहा। साहूजी वहाँ से गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ सोनगढ़ गये। गुरुदेवश्री से चर्चा करते समय मेरी शिकायत भी की। गुरुदेवश्री ने शान्ति से सब सुन लिया ; अन्त में अत्यन्त करुणाभाव से कहा - ''अरे, सेठिया ! व्यर्थ की बातों में जीवन खराब क्यों कर रहे हो ? तत्त्व की बात को समझो। आत्मा के कल्याण का कार्य करो। समाज में तो सब ऐसा ही चलता रहेगा।''

साहूजी एकदम गम्भीर हो गये और कहने लगे - ''आप ठीक कहते हैं। मैं समाज में जहाँ भी बड़े-बड़े सन्तों के पास जाता हूँ, सभी मेरी प्रशंसा ही करते हैं। पर आप ही एक ऐसे सन्त मिले हैं कि मुझे आत्महित करने की प्रेरणा दे रहे हैं। मैं आपकी बात पर ध्यान दूँगा।''

साहूजी समाज के सर्वमान्य नेता थे, उन्होंने समाज के हित के लिये बहुत काम किये हैं। हमारे विद्यालय को भी 10 छात्रों का खर्च देते थे।

प्रान्तिज शिविर से आरम्भ हमारा श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय अभी तक चल रहा है और अब तक एक हजार से भी अधिक उच्चकोटि के ठोस विद्वान तैयार हो चुके हैं, जो सारे देश में अपना-अपना काम करते हुये समाज की सेवा कर रहे हैं। कुछ विद्वान यू.एस.ए. (अमेरिका), इंग्लैण्ड, कनाडा, दुबई आदि देशों में भी हैं। वे वहाँ प्रतिदिन प्रवचन करते हैं, कक्षायें लेते हैं और भी अनेक प्रकार से धर्मप्रभावना करते हैं।

इसप्रकार से प्रशिक्षण शिविर और महाविद्यालय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं, इनके माध्यम से बहुत धर्मप्रभावना हुई है।

अब तक लगे 54 प्रशिक्षण शिविरों में मेरी उपस्थिति आदि से अन्त तक रही है। पाटनीजी तो शिविर की सम्पूर्ण व्यवस्था सम्भालते ही थे; गोदीकाजी भी अनेक शिविरों में पधारते थे और आदि से अन्त तक रहते थे।

प्रशिक्षण शिविर में दोनों समय प्रवचन तो होते ही थे। प्रतिदिन एक प्रवचन तो मैं स्वयं करता और अन्य प्रवचन पण्डित श्री खीमचन्दभाई शेठ, सोनगढ़; पण्डित श्री बाबूभाई मेहता, फतेपुर; बाबू श्री युगलकिशोरजी युगल, कोटा; पण्डित श्री लालचन्दभाई अमरचन्दजी मोदी, राजकोट; पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, बनारस आदि विद्वानों के होते थे।

प्रशिक्षण की मूल कक्षायें दो होती थीं। एक बालबोध प्रशिक्षण और दूसरी प्रवेशिका प्रशिक्षण। दोनों कक्षाओं की दो-दो कक्षायें लगती थीं। जिन्हें मैं और बड़े दादा पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल लिया करते थे। अभी उन्हें परमात्मप्रकाश, अध्यात्मप्रकाश, अभयजी, शान्तिजी आदि सम्भालते हैं।

सारी व्यवस्थायें आमंत्रण देने वाले सम्बन्धित लोगों के सहयोग से, संस्था के ट्रस्टीगण और अधिकारीगण, वरिष्ठ अध्यापक और मैनेजर, कर्मचारी आदि सम्भालते रहे हैं। अभी तक तो सभी प्रशिक्षण शिविर बड़ी सफलता के साथ चल रहे हैं। इन्हीं शिविरों में महाविद्यालय में छात्रों की भर्ती होती है।

महाविद्यालय में प्रवेश चाहने वाले छात्रों को इन शिविरों में प्रशिक्षण लेना अनिवार्य होता है। वे 18 दिन शिविरों में रहते हैं। महाविद्यालय के भूतपूर्व छात्र पूरे शिविर में उन पर निगाह रखते हैं। प्रथम श्रेणी में आने वाले छात्रों को ही प्रवेश दिया जाता है। अभी महाविद्यालय में 200 छात्र अध्ययन कर रहे हैं और इस वर्ष 50 नये छात्रों को प्रवेश दिया गया है। यह छात्रावासीय महाविद्यालय है और इसमें जैनदर्शन का अध्ययन कराया जाता है। ये छात्र विश्वविद्यालय की शास्त्री और आचार्य की परीक्षा देते हैं। इसके पूर्व 2 वर्ष का उपाध्याय का कोर्स है। इसप्रकार दो वर्ष उपाध्याय, तीन वर्ष शास्त्री और दो वर्ष आचार्य, कुल मिलाकर 5 या 7 वर्ष में छात्र जैनदर्शन के ठोस संस्कारी विद्वान बनकर निकलते हैं।

इन शिविरों में प्रशिक्षित होकर विद्वान गाँव-गाँव में रात्रिकालीन पाठशालाओं के माध्यम से जैनदर्शन की शिक्षा देते हैं। इस महाविद्यालय में जो छात्र पढ़ने आते हैं; वे स्वयं तो उच्चकोटि के विद्वान हो ही जाते हैं, उनके परिवार में अध्यात्म की रुचि जागृत हो जाती है; जहाँ वे रहते हैं, उस गाँव का वातावरण भी आध्यात्मिक हो जाता है।

अभी तक एक हजार से अधिक विद्वान तैयार हो चुके हैं। उनके माध्यम से सम्पूर्ण भारतवर्ष का वातावरण एकदम आध्यात्मिक हो गया है। यू.एस.ए., यू.के., कनाडा, दुबई, नैरोबी, सिंगापुर आदि विदेशी भूमियाँ भी उक्त आध्यात्मिक वातावरण से अछूती नहीं रहीं। लगता है

बहुत जीवों के संसार-समुद्र का किनारा नज़दीक आ गया है। यह सब देखकर मेरा चित्त प्रसन्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री के माध्यम से तो जिन-अध्यात्म के बहुत रहस्य हाथ लगे ही हैं; स्वयं की रुचि और गम्भीर अध्ययन, चिन्तन-मनन से भी बहुत रहस्य ख्याल में आये हैं। इसप्रकार हमें तो भरपूर लाभ मिला ही है; सम्पूर्ण समाज भी लाभान्वित हुआ है।

प्रशिक्षण शिविर प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में निरन्तर चल रहे हैं। अबतक 54 प्रशिक्षण शिविर लग चुके हैं, उनकी सूची इसप्रकार है -

क्र.	स्थान	सन्	क्र.	स्थान	सन्
01	जयपुर (राज.)	1969	02	विदिशा (म.प्र.)	1970
03	जयपुर (राज.)	1971	04	मलकापुर (महा.)	1971
05	सोलापुर (महा.)	1972	06	विदिशा (म.प्र.)	1972
07	आगरा (उ.प्र.)	1973	08	छिन्दवाड़ा (म.प्र.)	1974
09	कोटा (राज.)	1975	10	ललितपुर (उ.प्र.)	1976
11	प्रान्तिज (गुज.)	1977	12	उदयपुर (राज.)	1978
13	अजमेर (राज.)	1979	14	वाशिम (महा.)	1980
15	फिरोजाबाद (उ.प्र.)	1981	16	इन्दौर (म.प्र.)	1982
17	भीलवाड़ा (राज.)	1983	18	भिण्ड (म.प्र.)	1984
19	सागर (म.प्र.)	1985	20	अहमदाबाद (गुज.)	1986
21	मलाड (मुम्बई)	1987	22	मवाना (उ.प्र.)	1988
23	देवलाली (महा.)	1989	24	राजकोट (गुज.)	1990
25	इन्दौर (म.प्र.)	1991	26	भिंडर (राज.)	1992
27	भोपाल (म.प्र.)	1993	28	बीना (म.प्र.)	1994

क्र.	स्थान	सन्	क्र.	स्थान	सन्
29	देवलाली (महा.)	1995	30	जयपुर (राज.)	1996
31	जयसिंगपुर (महा.)	1997	32	देवलाली (महा.)	1998
33	इन्दौर (म.प्र.)	1999	34	देवलाली (महा.)	2000
35	बीना (म.प्र.)	2001	36	देवलाली (महा.)	2002
37	जयपुर (राज.)	2003	38	देवलाली (महा.)	2004
39	कोल्हापुर (महा.)	2005	40	देवलाली (महा.)	2006
41	देवलाली (महा.)	2007	42	अलीगढ़ (उ.प्र.)	2008
43	कोलारस (म.प्र.)	2009	44	देवलाली (महा.)	2010
45	जयपुर (राज.)	2011	46	सागर (म.प्र.)	2012
47	देवलाली (महा.)	2013	48	दिल्ली	2014
49	मेरठ (उ.प्र.)	2015	50	विदिशा (म.प्र.)	2016
51	खनियाँधाना (म.प्र.)	2017	52	द्रोणगिरि (म.प्र.)	2018
53	सूरत (गुज.)	2019	54	देवलाली (महा.)	2022

“प्रवचन करने का प्रयोजन
पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं,
अपितु आत्महितकारी तत्त्व की बात
जन-जन तक पहुँचाना है।”

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

ग्यारहवाँ अध्याय

महाविद्यालय

मैं महाविद्यालय आरम्भ करने का वातावरण निरन्तर बनाता रहता था। महाविद्यालय आरम्भ होने की कहानी भी अनोखी है, अद्भुत है। एक दिन की बात है कि बम्बई में विद्वानों का भोजन मुम्बई मुमुक्षु मण्डल के तत्कालीन दबंग अध्यक्ष चिमनलाल हिम्मतलाल शाह के घर पर था। हम सभी मुख्य लोग उनके घर पर बैठे थे, भोजन का इंतजार कर रहे थे। अनुकूल वातावरण देखकर मैंने महाविद्यालय के सन्दर्भ में चर्चा चलाई। आदरणीय बाबूभाईजी ने मेरी बात को बल दिया।

बातों ही बातों में बात सब जगह फैल गई। जब बात सब जगह फैल गई और गुरुदेव की स्वीकृति भी प्राप्त हो गई तो योजना को क्रियान्वित करने की चिन्ता हुई।

छात्रों के प्रवेश के लिये आवश्यक सूचना निकाली गई। छात्रों को प्रवेश के लिये प्रान्तिज शिविर में बुलाया गया। तीन छात्र सोनगढ़ से आये, गुरुदेवश्री ने भिजवाये; जिनमें एक ब्र. जतीशभाई भी थे। प्रान्तिज में 10 छात्रों को प्रवेश दे दिया गया।

महाविद्यालय

मोटानीजी के यहाँ लगभग सभी वरिष्ठ मुमुक्षु विद्वान बैठे थे। तत्त्वचर्चा चल रही थी। जब मैंने कहा कि शास्त्रों के अर्थ करने में बहुत सावधानी रखना चाहिये। एक-एक पंक्ति के अनेक अर्थ हो सकते हैं। लिखने में कोमा वगैरह लगाने से और बोलने में विभिन्न स्थानों पर बल देने से अर्थ में बहुत अन्तर पड़ जाता है।

जैसे - ''मैं आपसे यह कहूँ कि मैं अपना मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्र आपको नहीं दूँगा।''

इस वाक्य को बोलने की विधि से या विभिन्न स्थानों पर बल देने पर अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं।

अपने पर अधिक जोर दें या अपने के बाद कोमा लगा दें तो उसका यह अर्थ होगा कि मैं अपना मोक्षमार्ग प्रकाशक आपको नहीं दूँगा, क्योंकि उसमें मेरे निशान लगे हैं।

किन्तु यदि 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पर जोर दूँ तो उसका मतलब होगा कि मोक्षमार्ग प्रकाशक नहीं दूँगा, समयसार दे सकता हूँ।

और यदि 'आप' पर बल दूँ तो उसका यह अर्थ हो सकता है 'आपको नहीं दूँगा, अन्य को दे सकता हूँ।' ऐसे और भी अर्थ हो सकते हैं।

यह सुनकर लालचन्दभाई बहुत प्रभावित हुए और कहने लगे - ''हमें ऐसे ही विद्वान चाहिये।''

मैंने कहा –''महाविद्यालय हो तो ऐसे विद्वान तैयार हो सकते हैं।''

लालचन्दभाई के मुख से निकला – 'सचमुच'।

इसतरह मैं महाविद्यालय आरम्भ करने का वातावरण निरन्तर बनाता रहता था।

महाविद्यालय आरम्भ होने की कहानी भी अनोखी है, अद्भुत है। एक दिन की बात है कि बम्बई में विद्वानों का भोजन मुम्बई मुमुक्षु मण्डल के तत्कालीन दबंग अध्यक्ष चिमनलाल हिम्मतलाल शाह के घर पर था। हम सभी मुख्य लोग उनके घर पर बैठे थे, भोजन का इंतजार कर रहे थे।

अनुकूल वातावरण देखकर मैंने महाविद्यालय के सन्दर्भ में चर्चा चलाई। आदरणीय बाबूभाईजी ने मेरी बात को बल दिया।

लालचन्दभाई बोले – ''विद्यालय कौन चलायेगा?''

बाबूभाई बोले – ''डॉ. साहब चलायेंगे, और कौन चलायेगा।''

मैंने कहा – ''हाँ, मैं चलाऊँगा!''

मेरी बात सुनकर चारों ओर प्रसन्नता छा गई। पाटनीजी और गोदीकाजी तो चाहते ही थे। मोटानीजी ने भी समर्थन किया।

लालचन्दभाई बोले – ''गुरुदेवश्री से स्वीकृति लेनी होगी।''

बाबूभाईजी ने कहा – ''वह तो डॉ. साहब ले ही लेंगे।''

शशिभाई बोले – ''महाविद्यालय खोलोगे कहाँ?''

बाबूभाईजी ने कहा – ''जब पाटनीजी और डॉ. साहब को चलाना है तो जयपुर में ही खोलना होगा।''

गोदीकाजी ने अत्यन्त उत्साह से कहा – ''हाँ, अपने स्मारक में जगह है ही। मैं उसे विद्यार्थियों के रहने योग्य तैयार कर दूँगा।''

पाटनीजी ने कहा – ''सबसे पहले डॉ. साहब और शशिभाई को

प्रातः की फ्लाइट से सोनगढ़ भेजो। वे गुरुदेवश्री की स्वीकृति लावें। गुरुदेव की स्वीकृति के बिना तो कुछ होगा नहीं।''

बाबूभाईजी के होने पर आर्थिक चिंता करने की जरूरत है ही नहीं।

दूसरे दिन प्रातः मैं और शशिभाई पहली फ्लाइट से सोनगढ़ गये और गुरुदेव के पास जाकर उन्हें प्रसन्नता का समाचार सुनाया और महाविद्यालय खोलने की अनुमति चाही। महाविद्यालय खुलने की बात सुनकर उनके चित्त पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, पर यह महाविद्यालय खुलेगा कहाँ ?

जब अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मैंने यह कहा – ''जयपुर में, एक तो राजस्थान विश्वविद्यालय में जैनदर्शन शास्त्री का कोर्स चलता है और दूसरा उसे चलाने वाला मैं स्वयं जयपुर में रहता हूँ।

टोडरमल स्मारक भवन भी जयपुर में है और पाटनीजी जैसे व्यवस्थापक भी जयपुर में ही रहते हैं।

सोनगढ़ में न तो शास्त्री का कोर्स है और न कोई चलाने वाला ही है। पाटनीजी जैसा संचालक भी नहीं.....''

थोड़ी-बहुत चर्चा के उपरान्त गुरुदेवश्री को बात जँच गई और हम खुशखबरी लेकर मुम्बई आ गये।

बातों ही बातों में बात सब जगह फैल गई। जब बात सब जगह फैल गई और गुरुदेव की स्वीकृति भी प्राप्त हो गई तो योजना को क्रियान्वित करने की चिन्ता हुई।

छात्रों के प्रवेश के लिये आवश्यक सूचना निकाली गई। छात्रों को प्रवेश के लिये प्रान्तिज शिविर में बुलाया गया। तीन छात्र सोनगढ़ से आये, गुरुदेवश्री ने भिजवाये; जिनमें एक ब्र. जतीशभाई भी थे। प्रान्तिज में 10 छात्रों को प्रवेश दे दिया गया।

24 जुलाई, 1977 को श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का उद्घाटन श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन द्वारा सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर बोलते हुए साहूजी ने इसके संचालकों को धन्यवाद दिया और कहा कि डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के संरक्षणत्व के कारण इस महाविद्यालय की सफलता सुनिश्चित ही है। राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंहजी शेखावत ने अपने मुख्य अतिथीय भाषण में संस्था के प्रति मंगलकामना व्यक्त करते हुए सिद्धान्तों से किसी भी कीमत पर समझौता न करने की सलाह दी।

इसके पूर्व श्री नेमीचंदजी पाटनी ने विद्यालय एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय दिया। स्वागताध्यक्ष श्री कपूरचंदजी पाटनी ने अतिथियों का परिचय देते हुए पुष्पहारों से स्वागत किया। कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता ने ट्रस्ट का संक्षिप्त परिचय देकर अतिथियों का माल्यार्पण कर स्वागत किया। तत्पश्चात् पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से डॉ. भारिल्ल ने भी स्वागत किया तथा श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी ने सम्माननीय अतिथियों को जैन ग्रंथों के सेट भेंट किये।

श्रीमान् त्रिलोकचंदजी जैन, उद्योग मंत्री, राजस्थान सरकार; श्री निर्मलचंदजी जैन संसद सदस्य, श्री मोहनलालजी छाबड़ा संसद सदस्य एवं अध्यक्ष श्री लालचंदजी भाई मोदी ने भी सभा को सम्बोधित किया।

इस अवसर पर बाहर से भी सैकड़ों लोग पधारे थे। स्थानीय उपस्थिति सीमातीत थी। टोडरमल स्मारक भवन का विशाल हॉल खचाखच भरा था तथा काफी संख्या में लोग बाहर खड़े थे। यह भी सुखद संयोग ही रहा कि विगत 8 दिनों से निरन्तर वर्षा हो रही थी, पर उस दिन वर्षा नहीं हुई और उत्सव पूर्ण आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ। उसके बाद भी 5 दिन तक वर्षा बराबर चलती रही।

13 विद्यार्थियों से सन् 1977 में आरम्भ हुए इस विद्यालय में आज 200 से अधिक विद्यार्थी अध्यनरत हैं –

प्रथम बैच में पण्डित जतीशचन्दजी जैन, सनावद एवं पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री, खनियाँधाना आज समाज के विख्यात प्रतिष्ठाचार्य हैं, जिन्होंने अनेक रिकोर्ड बनाए हैं।

पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली आज जैनदर्शन के अधिकारी विद्वान हैं। श्री राजकुमारजी शास्त्री, गुना भी समाज के एक प्रतिष्ठित विद्वान हैं। श्री शिखरचन्द्रजी जैन, गुरसौरा, जो कुछ समय पूर्व ही केन्द्रीय विद्यालय में प्राचार्य के पद से रिटायर हुये हैं। पण्डित राकेशजी शास्त्री, नागपुर न्याय-शास्त्रों के प्रसिद्ध विद्वान हैं एवं कई वर्षों तक नागपुर विद्यालय के प्राचार्य व निर्देशक रहे। डॉ. श्रेयांसकुमारजी जैन, खुरई आज केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर में जैनदर्शन विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे हैं।

श्री पद्माकरजी मुंजोले, बेलकुड राजस्थान शिक्षा विभाग से सेवानिवृत्त हो कोल्हापुर में धार्मिक गतिविधियों में संलग्न हैं। पण्डित महावीरजी पाटील, सांगली महाराष्ट्र में प्रचार-प्रसार के मुख्य आधार रहे। डॉ. सुदीपजी शास्त्री दिल्ली श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली में प्राकृत विभाग में प्रोफेसर एवं विभागध्यक्ष हैं।

श्री कमलेशकुमारजी जैन, मौ निजी व्यवसाय करते हुए सामाजिक स्तर पर प्रवचनादि करते हैं। श्री सन्तोषकुमारजी जैन, दमोह इंजीनियरिंग करके महाविद्यालय में आए थे। अब सोनगढ़ में रहकर प्रवचनादि कार्य करते हैं। श्री रमेशजी 'मंगल', ललितपुर सोनगढ़ में रहते हैं, एक अच्छे विद्वान हैं, गोष्ठी आदि का संचालन किया करते हैं।

दूसरे बैच में डॉ. विनोदकुमारजी जैन विदिशा स्वयं का व्यवसाय करते हुए प्रवचनादि कार्यों में संलग्न हैं। श्री भानुकुमारजी जैन, ललितपुर स्वयं का व्यवसाय करते हुए ललितपुर में प्रवचनादि करते हैं।

श्री महेन्द्रकुमारजी शास्त्री, भिण्ड निजी व्यवसाय के साथ प्रचारादि के कार्यों में संलग्न हैं।

डॉ. योगेशजी जैन, अलीगंज जैनदर्शन के अच्छे विद्वान हैं एवं आयुर्वेद की शुद्ध रीति से औषधि तैयार करने की फार्मेसी चलाते हैं। श्री सुभाषजी पाटील निजी व्यवसाय में संलग्न हैं। श्री प्रेमचन्दजी जैन, भौंति राजकीय संस्कृत महाविद्यालय से सेवानिवृत्त हैं। श्री कैलाशचन्दजी मलैया, भीकमपुर राजकीय माध्यमिक विद्यालय में प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हैं।

डॉ. शान्तिकुमारजी पाटील, जयपुर ने अध्ययन के उपरान्त इसी महाविद्यालय में सेवायें दीं, आज महाविद्यालय के प्राचार्य के पद पर कार्यरत हैं एवं आत्मख्याति के विशेषज्ञ विद्वान हैं। ब्र. कैलाशचन्दजी 'अचल', ललितपुर अच्छे प्रवचनकार विद्वान हैं। श्री अशोककुमारजी लुहाड़िया धर्मप्रचार करते हुए मंगलायतन में अध्ययन-अध्यापन का कार्य सम्भाल रहे हैं। श्री राकेशकुमारजी जैन, खनियाँधाना प्रवचन-विधानादि के माध्यम से दिल्ली महानगर में तत्त्वप्रचार में योगदान दे रहे हैं।

तीसरे बैच में डॉ. अशोककुमारजी गोयल बण्डा केन्द्रीय विद्यालय में अध्यापक रहते हुए समाज में विधि-विधानादि के कार्यों के साथ स्वाध्याय में संलग्न हैं। डॉ. विमलकुमारजी जैन गुढ़ा समाज के प्रतिष्ठित प्रतिष्ठाचार्य एवं राजस्थान शिक्षा बोर्ड में अध्यापक पद से सेवानिवृत्त हैं।

डॉ. वीरसागरजी जैन, दिल्ली न्याय-शास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान हैं, आज श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में जैनदर्शन के विभागाध्यक्ष हैं। श्री रावसाहेब नरदेकर, कुपवाड़ निजी व्यवसाय में संलग्न हैं। श्री बाहुबली भोसगे, शेडबाल हिन्दी प्राध्यापक, हिन्दी शिक्षण योजना, राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय, भारत सरकार में कार्यरत हैं। श्री बिपिनकुमारजी जैन, मुम्बई अच्छे

विद्वान हैं, जवाहरात के व्यापारी हैं एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं ढाईद्वीप जिनायतन के ट्रस्टी हैं।

चतुर्थ बैच में श्री अरविन्दकुमारजी सिंघई, दरगुँवा राजकीय विद्यालय, भीलवाड़ा में प्राचार्य के पद से निवृत्त हो स्वाध्यायादि कार्यों में संलग्न हैं। श्री कमलकुमार जैन, चनौआ जवाहर नवोदय विद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हैं। श्री सुरेशचन्दजी शास्त्री, कोलारस सोनागिर में रहकर तात्त्विक गतिविधियों का संचालन करते हैं।

श्री रमेशचन्दजी जैन, अछरौनी प्रथमानुयोग के अच्छे विद्वान हैं एवं अनेक पुस्तकों के सम्पादन आदि का कार्य भी करते हैं। श्री विवेकचन्दजी जैन, शिरडशहापुर राजकीय माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक पद से सेवानिवृत्त होकर औरंगाबाद में प्रवचन करते हैं। श्री जम्बूकुमारजी जैन, अरकोनम केन्द्रीय विद्यालय में अध्यापक हैं। श्री अनिलकुमारजी जैन, खनियाँधाना अपना निजी व्यवसाय करते हैं। श्री आदिनाथजी उपाध्ये, बुबनाल अपना निजी व्यवसाय करते थे। श्री भरतेशजी पाटील, मुरगुण्डी सहायक आयुक्त आयकर विभाग में कार्यरत थे। श्री आलोककुमारजी जैन, लोणगाँव श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम वीरावाडी, कारंजा में अध्यापक पद से रिटायर होकर वहीं पर अपनी सेवायें दे रहे हैं। इसप्रकार पहला सत्र 1980 ई. में समाप्त हो गया।

प्रतिवर्ष 30-40 विद्यार्थी महाविद्यालय में प्रवेश लेते हैं। अबतक 45 बैच निकल चुके हैं, उनकी सूची इसप्रकार है –

बैच	सत्र	संख्या	बैच	सत्र	संख्या
01	1977-81	13	02	1977-82	12
03	1979-83	07	04	1980-84	10
05	1981-85	10	06	1982-86	09

बैच	सत्र	संख्या	बैच	सत्र	संख्या
07	1983-87	05	08	1984-88	13
09	1985-89	07	10	1986-90	11
11	1987-91	09	12	1988-93	09
13	1989-94	14	14	1990-95	13
15	1991-96	12	16	1992-97	07
17	1993-98	23	18	1994-99	27
19	1995-2000	30	20	1996-01	26
21	1997-02	36	22	1998-03	29
23	1999-04	29	24	2000-05	34
25	2001-06	29	26	2002-07	35
27	2003-08	39	28	2004-09	21
29	2005-10	24	30	2006-11	28
31	2007-12	29	32	2008-13	25
33	2009-14	30	34	2010-15	30
35	2011-16	35	36	2012-17	34
37	2013-18	25	38	2014-19	24
39	2015-20	41	40	2016-21	39
41	2017-22	35	42	2018-23	29

“हमें विरोधी को नहीं, विरोध को जीतना है।”

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अधूरी उल्टी आत्मकथा

बारहवाँ अध्याय

जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन

“गुरुदेवश्री के अनुयायी सभी मुमुक्षुभाई उनके वियोग में स्वयं ही अस्त-व्यस्त हो रहे थे। साथ में मौका देखकर विरोधी पक्ष ने उनके विरुद्ध स्थान-स्थान पर आक्रमण तेजी से आरम्भ कर दिये थे। उक्त विषम परिस्थिति का आ. बाबूभाई के नेतृत्व में हम सब लोग सामना कर ही रहे थे कि बीच में बाबू भाई भी चले गये। समाज का वातावरण बहुत विषाक्त हो गया था। जिनवाणी की सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी।”

“भाई ! जिस समाज में हम रहते हैं, उस समाज में होनेवाले हर गलत कार्य के हम भी तो कुछ अंशों में जिम्मेदार हैं; भले ही वह कार्य हमने न किया हो, हमने न कराया हो, हमने उसकी अनुमोदना भी न की हो, पर हम उसे रोक नहीं सके, यह पीड़ा तो हमें भी है ही। समझ लीजिए हमारी ये प्रार्थनाएँ उस पीड़ा का ही परिणाम हैं, हमारे उपवास उक्त उत्तरदायित्व नहीं निभा पाने के प्रायश्चित हैं। दुनिया चाहे बदले, चाहे न बदले; पर प्रार्थना में सम्मिलित होनेवालों को, उपवास करनेवालों को आत्मशान्ति तो प्राप्त होगी ही।”

12

जिनवाणी सुरक्षा एवं समाज एकता आन्दोलन

25 नवम्बर, 1980 को पूज्य गुरुदेवश्री का स्वर्गवास हो गया। सारे देश में शोक का वातावरण छा गया।

सोनगढ़ में उनकी अंत्येष्टि के समय जलती हुई चिता के सामने आदरणीय बाबूभाईजी और मैंने संकल्प किया कि जब तक तन में अन्तिम श्वास रहेगी, तब तक पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा बताये हुए वीतरागी तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार करते रहेंगे। आदरणीय बाबूभाईजी तो सन् 1985 में चले गए; पर मैं अभी भी उसी महान काम में लगा हुआ हूँ।

जब तक पूज्य गुरुदेवश्री सोनगढ़ में विराजते थे; तब तक हम श्रावण मास में लगने वाले शिविर में सभी छात्रों को लेकर 20 दिन के लिए सोनगढ़ जाते थे। हमें तो गुरुदेवश्री का मंगल आशीर्वाद प्राप्त होता ही था, छात्रों पर भी उनके वात्सल्य की अपूर्व वर्षा होती थी। पूज्य गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के बाद मुमुक्षु समाज संगठित नहीं रह सका। वह दो भागों में विभक्त हो गया – सोनगढ़ और जयपुर। आदरणीय बाबूभाई मेहता के साथ विद्वानों का एक बहुत बड़ा समूह जयपुर के पक्ष में हो गया। आ. बाबूभाईजी अधिक दिन तक स्वस्थ न रह सके और वे पार्किंसन नामक महारोग से ग्रसित हो गये।

अपनी रुग्ण अवस्था में वे अधिकांश समय जयपुर में ही रहे और जयपुर में उनके मार्गदर्शन में तत्त्वप्रचार का महान कार्य करता रहा।

22 मई, 1985 को आदरणीय बाबूभाईजी का स्वर्गवास हो गया, उस समय सागर में प्रशिक्षण शिविर चल रहा था। वहाँ से बहुत लोग उनके तीया (तीये की बैठक) में फतेहपुर गये थे।

गुरुदेवश्री के अनुयायी सभी मुमुक्षुभाई उनके वियोग में स्वयं ही अस्त-व्यस्त हो रहे थे। साथ में मौका देखकर विरोधी पक्ष ने उनके विरुद्ध स्थान-स्थान पर आक्रमण तेजी से आरम्भ कर दिये थे। उक्त विषम परिस्थिति का आ. बाबूभाई के नेतृत्व में हम सब लोग सामना कर ही रहे थे कि बीच में बाबूभाई भी चले गये। इस विषम परिस्थिति का सामना करने के लिए पाँच व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई गई। समाज का वातावरण बहुत विषाक्त हो गया था। जिनवाणी की सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी। वातावरण की शुद्धि के लिए जिनवाणी सुरक्षा और सामाजिक एकता के सन्दर्भ में एक अहिंसक आन्दोलन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई, जो इसप्रकार थी।

सागर (म.प्र.) में सम्पन्न श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर 1 जून से 3 जून, 1985 तक लगातार तीन दिन तक चले प्रवचनकार सम्मेलन में प्रतिदिन दो-दो घंटे गम्भीरतम विचार-विमर्श हुआ। एक सौ इक्यावन प्रवचनकार बन्धुओं एवं सहस्राधिक जनता की उपस्थिति में छह घंटे के गंभीरतम विचार-विमर्श के उपरान्त माँ जिनवाणी की सुरक्षा, आगम-विरुद्ध कार्यों के निषेध एवं सामाजिक एकता के लिए एक अहिंसात्मक जन-जागृति कार्यक्रम प्रारम्भ करने का सर्वसम्मत महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया।

इस कार्यक्रम का नाम रखा गया - "**जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन।**" इसके संचालन का कार्य पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को सौंपा गया। इसके संचालन के लिए एक संचालन समिति का भी सर्वसम्मत चयन किया गया। इस पंच सदस्यीय संचालन समिति के सदस्य थे - सर्वश्री जुगलकिशोरजी युगल, कोटा;

नेमीचन्दजी पाटनी, आगरा; डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर; ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर एवं ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, इन्दौर।

इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में स्व. श्री बाबूभाईजी मेहता से भी रणासन शिविर के अवसर पर विचार-विमर्श हुआ था। उन्होंने स्वयं इसकी आवश्यकता अनुभव की थी और मुझे इसकी विस्तृत रूपरेखा बनाने का आदेश दिया था, पर हमारा इतना भाग्य कहाँ था कि हमें इस कठिन घड़ी में उनकी छत्रछाया उपलब्ध रहती? उनके मार्गदर्शन में हम सबने बड़े से बड़े संकट पार किए थे। इस संक्रान्तिकाल में उनकी छत्रछाया समाप्त हो जाना हमारे लिए एक बड़ी चुनौती थी, जिसे हमें हिम्मत के साथ स्वीकार करना था और पूरी निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्य को निभाना था।

जिनशासन की प्रभावना, जीवन्त तीर्थ जिनवाणी की सुरक्षा एवं सामाजिक एकता के सन्दर्भ में उनकी सराहनीय सेवाओं एवं अभूतपूर्व उपलब्धियों का मूल्यांकन हमने विशेषांक के माध्यम से स्वतंत्र रूप से किया। उनकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने उनकी तृतीय मासिक पुण्यतिथि पर 22 अगस्त से 26 अगस्त, 1985 तक एक पंचदिवसीय कार्यक्रम रखा, जिसमें पूजन विधान के साथ-साथ प्रवचन आदि के कार्यक्रम भी रखे गए।

इसी अवसर पर उनकी स्मृति में जैनपथ प्रदर्शक का एक विशेषांक भी प्रकाशित किया गया। नवनिर्मित वीतराग-विज्ञान भवन का उद्घाटन भी इसी अवसर पर हुआ। इस अवसर पर बाबू जुगलकिशोरजी युगल, कोटा आदि सभी विद्वान पधारे। इसी अवसर पर पर्यूषण में भेजे जानेवाले विद्वानों की सूची को अन्तिम रूप प्रदान किया गया और तब तक उत्पन्न सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन के आगामी कार्यक्रमों को भी अन्तिम रूप दिया गया। इस सन्दर्भ में तबतक किए गये हमारे प्रयासों की स्थिति का भी मूल्यांकन किया गया।

इस अवसर पर आवास एवं भोजन की सम्पूर्ण व्यवस्था निःशुल्क रही। हमारा विश्वास था कि विद्वद्वर्य बाबूभाई में श्रद्धा रखनेवाले उनके प्रभाव में तत्त्व के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों के सुचारु रूप से संचालन में रुचि रखनेवाले एवं हमारे इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाले आत्मार्थी बन्धु अधिक से अधिक संख्या में अवश्य पधारेंगे।

हमारे इस 'जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन' के तीन चरण थे; प्रथम चरण में हमने इस शान्तिप्रिय आन्दोलन में भाग लेने वाले कम-से-कम दश हजार कार्यकर्त्ताओं के संकल्पपत्र प्राप्त किए, जिसमें उन्होंने यह संकल्प किया कि हम देव-शास्त्र-गुरु की अवज्ञा न तो स्वयं करेंगे, न करायेंगे और न करनेवालों की अनुमोदना ही करेंगे। आगम के आधार बिना परम्परा विरुद्ध किए जानेवाले कार्यों, जिनवाणी की अवमानना एवं सामाजिक विघटन को रोकने के लिए शान्तिप्रिय अहिंसात्मक मार्ग ही अपनायेंगे।

दूसरे चरण में हम अपनी शान्ति-प्रार्थनाएँ आरम्भ करेंगे; पर ध्यान रहे, ये शान्ति-प्रार्थनाएँ संचालन समिति के निर्देश बिना प्रारम्भ नहीं करनी हैं। संचालन समिति जब आवश्यक समझेगी, तब सभी केन्द्रों को निर्देश देगी; निर्देश प्राप्त करने के पूर्व कहीं भी प्रार्थना-सभाएँ नहीं करनी हैं। प्रार्थना-सभाएँ हम तभी आरम्भ करेंगे, जब इसकी गहरी आवश्यकता अनुभव करेंगे।

इन प्रार्थना-सभाओं में प्रातःकालीन प्रवचनोपरान्त सभी भाई खड़े होकर प्रथम महावीर-वन्दना फिर मेरी भावना और उसके बाद गद्य प्रार्थना बोलेंगे। प्रत्येक प्रार्थना-सभा का एक मनोनीत संयोजक होगा, जो स्थानीय कार्यक्रम का संयोजन करेगा और संचालन समिति से सम्पर्क रखेगा, संचालन समिति के सभी निर्देश सदस्यों तक पहुँचायेगा।

यदि एक नगर में अनेक स्थानों पर प्रार्थना सभाएँ होती हैं तो प्रत्येक प्रार्थना सभा के संयोजकों के अतिरिक्त एक नगर संयोजक भी होगा; जो

सम्पूर्ण नगर की प्रार्थना-सभाओं के संयोजन कार्य को देखेगा, व्यवस्थित करेगा। इसीप्रकार आवश्यकतानुसार जिला, प्रान्त आदि के संयोजक भी बनाये जायेंगे। एक स्थान पर सम्पन्न होनेवाली प्रत्येक प्रार्थना-सभा का संयोजक एक ही होगा, पर मुख्य अतिथि प्रत्येक बार बदलते रहेंगे। संयोजक समाज के सुयोग्य, शान्तिप्रिय, प्रतिष्ठित महानुभावों से अपनी प्रार्थना-सभा का मुख्य अतिथि बनने का अनुरोध करेंगे और उनसे उस दिन की प्रार्थना-सभा का संचालन करायेंगे।

सभी महानुभाव पंक्तिबद्ध कई पंक्तियों में खड़े होंगे और संयोजक एवं मुख्य अतिथि उनके सामने खड़े होंगे। सभी लोग बायें हाथ पर पीली पट्टी बाँधे होंगे और सभी के पास प्रार्थना-पुस्तिका होगी।

महावीर वन्दना और मेरी भावना का सभी लोग सामूहिक पाठ करेंगे और पुस्तिका में दूसरे पृष्ठ पर छपी गद्य प्रार्थना के एक-एक वाक्य को मुख्य अतिथि पहले बोलेंगे, उनके बाद सभी लोग बोलेंगे।

प्रार्थना समाप्त होने पर लोग शान्त भाव से तब तक खड़े रहेंगे, जब तक कि प्रार्थना-सभा में सम्मिलित लोगों की गणना नहीं हो जाती। गणना की विधि यह रहेगी कि प्रत्येक पंक्ति का अन्तिम व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति को गिनते हुए प्रथम व्यक्ति तक आएगा और उसे संख्या बता देगा, उसके बाद संयोजक प्रत्येक पंक्ति के प्रथम व्यक्ति के पास जाकर उनसे संख्या पूछकर डायरी में नोट करेगा। तत्काल सबका जोड़ लगाकर सबको बतायेगा कि आज की संख्या कितनी रही है?

इसके बाद प्रार्थना-सभा समाप्त होगी और सभी व्यक्ति पीली पट्टी बाँधे-बाँधे ही घर जायेंगे। प्रार्थना-सभा की संख्या की जानकारी संयोजक उसी दिन की डाक से केन्द्रीय कार्यालय को भेज देंगे।

संयोजक इस बात का ध्यान रखेंगे कि पुरुषों की पंक्तियाँ अलग हों एवं महिलाओं की पंक्तियाँ अलग। प्रत्येक पंक्ति का प्रथम व अन्तिम

व्यक्ति ऐसा हो, जो सही गणना कर सके। यदि आवश्यकता हुई तो हम सामूहिक उपवास के तृतीय चरण में प्रवेश करेंगे।

तृतीय चरण में जहाँ तक संभव हो, जिनमंदिर में अन्यथा स्वाध्याय भवन में, धर्मशाला या सार्वजनिक स्थान पर एक दिन का उपवास करेंगे, जिसमें दिन भर सभी लोग निराहार रहेंगे; मात्र बालक, वृद्ध, बीमार और अशक्त लोग दवा और पानी ले सकते हैं। दिनभर पूजन, विधान, वैराग्यभावना-बारहभावना आदि का पाठ, स्वाध्याय एवं प्रवचन आदि कार्यों में ही संलग्न रहेंगे; कोई भी व्यक्ति उत्तेजनात्मक व्याख्यान नहीं देंगे, उत्तेजना उत्पन्न करनेवाली चर्चा भी नहीं करेंगे। विकथा तो कोई करेगा ही नहीं, सभी तत्त्वचर्चा में ही संलग्न रहेंगे। सम्पूर्ण कार्यक्रम में हाथ पर पीली पट्टी अवश्य बाँधे रहेंगे।

संयोजकगण सामूहिक उपवास में सम्मिलित होनेवाले व्यक्तियों की नामावली सहित सम्पूर्ण समाचार केन्द्रीय कार्यालय को उसी दिन या उसके दूसरे दिन अवश्य भेज देंगे। यदि सूची बहुत लम्बी हो तो कतिपय महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम अवश्य लिखेंगे।

इस कार्यक्रम की सूचना पुलिस को पहिले ही अवश्य करेंगे, जिससे यह शान्तिप्रिय अहिंसात्मक आन्दोलन निर्विघ्न चल सके और इस आन्दोलन को अवांछित तत्त्व बदनाम न कर सकें। यदि कोई व्यक्ति आन्दोलन की भावना के अनुसार वर्तन नहीं करता है, हिंसात्मक आचरण करता है तो संयोजकगणों को अधिकार होगा कि वे उसे आन्दोलन से पृथक् कर दें। इसकी सूचना केन्द्रीय कार्यालय को तत्काल अवश्य दें। ध्यान रहे, उपवास का कार्यक्रम भी बिना हमारे निर्देश के आरम्भ नहीं करना है, जब संचालन समिति आवश्यक समझेगी, तब सबको समय रहते सूचित करेगी।

हमारे इस आन्दोलन का पवित्र उद्देश्य प्रार्थना-सभाओं एवं सामूहिक उपवास द्वारा हम और हमारे साथ सभी साधर्मी बन्धुओं के

हृदयों को निर्मल करना था, अपनी निर्मल भावना को सशक्त ढंग से सभी साधर्मी भाइयों तक पहुँचाना था, जिससे वे जिनागम और जिन-परम्परा विरुद्ध कार्य करने से विरत हों, जिनवाणी की अवज्ञा के महापाप में संलग्न न हों और सामाजिक विघटन की स्थितियाँ उत्पन्न करने से भी विरत हों। यह काम अहिंसात्मक ढंग से ही हो सकता था।

जीवनभर अहिंसा की साधना-आराधना करनेवाले हम और हमारे साथी दूसरे रास्ते पर जा भी तो नहीं सकते।

जिनागम और जिन-परम्परा के विरुद्ध कार्यों से एवं जिनवाणी की अवमानना से क्षुब्ध हमारे ही कुछ साधर्मी बन्धु उत्तेजित होकर कहते थे कि यह कैसे संभव है कि जिनागम विरुद्ध कार्य होते रहें, जिनवाणी की अवमानना होती रहे और हम प्रार्थनाएँ करते रहें, उपवास करते रहें? हमसे यह सब कैसे देखा जाएगा? हम भी उसी कुएँ का पानी पीते हैं, हम भी उसी धूल-मिट्टी में पले-पुसे हैं, हमने भी चूड़ियाँ नहीं पहिन रखी हैं; हम जान की बाजी लगा देंगे, पर यह सब नहीं होने देंगे; यदि एक-दो जगह वे हमारे प्रिय शास्त्रों की अवमानना कर सकते हैं, तो हम भी..........।

पर हमारा कहना यह था कि भाई! इससे जिनवाणी की अवमानना रुकेगी कैसे? यह तो दूनी अवमानना की बात हुई; वे आपके द्वारा प्रकाशित जिनवाणी जलायेंगे और आप उनके द्वारा प्रकाशित। इसमें तो जिनवाणी माँ का विनाश ही होगा, सुरक्षा नहीं। जो काम म्लेच्छ भी न कर पाये, कराल काल भी न कर पाया, वह महानर्थ हम स्वयं कर डालेंगे।

भाई! यह रास्ता ठीक नहीं है, यह जिनवाणी के विनाश और समाज के विघटन का रास्ता है, इस पर चलना समझदारी का काम नहीं है।

कोई कहते थे – ''हम जिनवाणी जलायेंगे नहीं, पर मन्दिरों से हटा देंगे, पर उन्हीं मन्दिरों से तो हटायेंगे, जो उनके अधिकार में होंगे।''

उनकी प्रतिक्रिया में यदि हम अपने मन्दिरों से उनके यहाँ से प्रकाशित जिनवाणी हटाने लग जायें तो भी तो जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में अवरोध ही होगा।

जरा विचार तो करो जब जिनवाणी घर-घर तक पहुँचाने का हमारा संकल्प है, जीवन भी उसी में लगा रखा है तो हम ऐसा कार्य कैसे कर सकते हैं कि जिससे जिनवाणी के प्रचार-प्रसार का रास्ता अवरुद्ध हो ?

हमारे मन्दिरों में, घरों में गीता भी है, पुराण भी है, कुरान भी है। हमारे पूर्वज तो सभी प्रकार का साहित्य इकट्ठा करते थे और हम जिनवाणी पर भी प्रतिबंध लगाएँ, यह कैसे सोचा जा सकता है ?

भाई! प्रतिकार का रास्ता उचित नहीं है, प्रतिकार का रास्ता विघटन की ओर जाता है। यदि समाज को संगठित रखना है, जिनवाणी को जन-जन की वाणी बनाना है, तो इस विनाशकारी रास्ते पर चलने की बात सोचना भी पाप है। हमारे जो साधर्मी भाई इस रास्ते पर चल रहे थे, उनकी भी पीड़ा हमें समझनी चाहिए, वे भी देव-शास्त्र-गुरु के भक्त थे, उन्हें भी जिनवाणी माँ के प्रति उतना ही सम्मान था, जितना कि हमें; पर हमारे ही भाइयों ने जो अविवेकपूर्ण कदम उठाये थे, उनसे उनका चित्त उत्तेजित हो गया था। उनके विरुद्ध कुछ कहने और करने के पहले इस बात को ध्यान में रखना जरूरी था।

इसीप्रकार हमारे जिन साथियों ने सबकी भावनाओं की अवहेलना कर जिनागम के आधार बिना जो कार्य किया था, उसमें भी उनकी अतिशय भक्ति ही मूल प्रेरक रही थी। जिन पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामीजी ने उन्हें मिथ्यात्व के महा-अंधकार से निकालकर सद्धर्म का मार्ग सुझाया, उनके प्रति उनकी अतिशय श्रद्धा होना स्वाभाविक ही था, पर उन्हें अपनी श्रद्धा और भक्ति व्यक्त करने का आगम-सम्मत और जिन परम्परा से अविरुद्ध निरापद रास्ता चुनना चाहिए था।

यह भी हमारा दुर्भाग्य रहा कि अनन्त प्रयत्नों के बाद भी हम उन्हें इससे विरत न कर सके। इतना सबकुछ होकर भी वे उसी मार्ग पर बढ़े जा रहे थे और उससे उत्तेजित होकर समाज भी असंतुलित-सा होता जा रहा था। ऐसी स्थिति में हमारे पास इस शान्तिप्रिय आन्दोलन के अतिरिक्त कोई रास्ता शेष नहीं रह गया था। इस महापाप से स्वयं बचने और समाज को बचाने के लिए प्रार्थना और उपवास करने के अतिरिक्त हम कर भी क्या सकते थे?

भाई! जिस समाज में हम रहते हैं, उस समाज में होनेवाले हर गलत कार्य के हम भी तो कुछ अंशों में जिम्मेदार हैं; भले ही वह कार्य हमने न किया हो, हमने न कराया हो, हमने उसकी अनुमोदना भी न की हो, पर हम उसे रोक नहीं सके, यह पीड़ा तो हमें भी है ही। समझ लीजिए हमारी ये प्रार्थनाएँ उस पीड़ा का ही परिणाम हैं, हमारे उपवास उक्त उत्तरदायित्व नहीं निभा पाने के प्रायश्चित्त हैं।

दुनिया चाहे बदले, चाहे न बदले; पर प्रार्थना में सम्मिलित होनेवालों को, उपवास करनेवालों को आत्मशान्ति तो प्राप्त होगी ही।

कुछ लोग कहते थे कि यदि समाज ने आपकी इस आवाज को नहीं सुना, इस पर ध्यान नहीं दिया, आपकी इन प्रार्थना-सभाओं में लोग सम्मिलित ही न हुए तो आप क्या करेंगे?

ऐसा भी हो सकता था, यह सोचा ही नहीं था। हम समाज से अपने लिए कुछ नहीं माँग रहे थे, लड़ने-मरने के लिए भी नहीं कह रहे थे, मात्र प्रार्थना-सभाएँ एवं उपवास करने के लिए ही तो कह रहे थे; जिनवाणी माँ के अपमानित होने पर समाज इतना भी करने को तैयार न होगा – यह हम सोच भी नहीं सकते। भाई! आप कुछ भी कहें, पर समाज अभी इतना हृदयहीन नहीं हुआ है – यह हम अच्छी तरह जानते हैं।

हमारा यह प्रयास विशुद्ध जिनवाणी की सुरक्षा एवं सामाजिक

एकता के लिए ही था, इसमें हमारा स्वयं का कुछ भी स्वार्थ नहीं था। हमें तब भी सम्पूर्ण समाज का पूर्ववत् ही वात्सल्य प्राप्त था। इस प्रगट घटना के बाद भी हमने समाज में पाँच-पाँच पंचकल्याणक सम्पन्न किए थे। एक हस्तिनापुर (उ.प्र.) में, एक अहमदाबाद (गुजरात) में, एक बागीदौरा (राजस्थान) में और दो दिल्ली में। सभी पंचकल्याणकों में अपार भीड़ ने बड़े ही प्रेम से तत्त्व सुना था, स्नेह प्रगट किया था। सबमें मिलकर एक लाख रुपये से भी अधिक का धार्मिक साहित्य बिका था।

तभी हाल ही में सागर (म.प्र.) में 20 दिवसीय विशाल शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर भी लगा था, जिसमें लगातार बीस दिन तक हजारों जनता ने मंत्र-मुग्ध होकर तत्त्व सुना था और एक लाख रुपये का सत्साहित्य और कैसेट बिके थे। धार्मिक समाज का जो वात्सल्य हमें प्राप्त था, उसके बल पर हम कह सकते थे कि समाज हमारी निश्छल आवाज की अनदेखी नहीं करेगी।

कुछ लोगों का यह भी कहना था कि जहाँ न तो परम्परा व आगम विरुद्ध कार्य ही हो रहे थे और न जिनवाणी की विराधना का महापाप; तथा जहाँ सामाजिक संगठन को भी कोई खतरा नहीं था, सर्वप्रकार शान्ति थी; वहाँ इस आन्दोलन की क्या आवश्यकता थी?

भाई! आगम विरुद्ध कार्य, जिनवाणी की विराधना एवं सामाजिक विघटन की समस्या क्षेत्र विशेष की समस्या नहीं थी, अपितु देश-विदेश में फैली सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज की समस्या थी; अतः इस आन्दोलन को क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रखा जा सकता था।

क्या यह संभव है कि एक स्थान पर आगमविरुद्ध कार्य होते रहें या जिनवाणी की विराधना होती रहे और दूसरे स्थानों की समाज शान्ति से बैठी रहे? नहीं, कदापि नहीं। भाई! सूर्यकीर्ति की प्रतिष्ठा भी गाँव-गाँव में नहीं, एक स्थान विशेष पर ही हो रही थी; उससे सम्पूर्ण समाज क्यों आन्दोलित हुआ? भाई! इसप्रकार की समस्याओं को क्षेत्र विशेष

तक सीमित रखना न तो संभव ही था और न उचित ही।

आन्दोलन का सशक्त रूप तो वहीं सामने आया, जहाँ की समाज में आगम विरुद्ध कार्यों एवं जिनवाणी की विराधना के विरुद्ध एक मत हुआ। जहाँ बहुमत अनर्थ करने पर तुला था, वहाँ के शान्तिप्रिय विवेकीजन तो संत्रस्त ही थे; उनका मनोबल बढ़ाने के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें प्रतीति हो कि हम अकेले नहीं हैं, सम्पूर्ण देश-विदेश में फैला एक विशाल समुदाय हमारे इस संकट का साथी है।

एक बात यह भी तो है कि आगम विरुद्ध कार्य और जिनवाणी की विराधना कहीं भी क्यों न हो; वह अनर्थक ही है, विघटनकारी ही सिद्ध होगी। अतः सभी धर्मप्रेमी समाज को इस आन्दोलन में पूरी शक्ति से जुटना था।

हम अपने इन कार्यक्रमों को देश भर में फैले मुमुक्षु मण्डलों और अखिल भारतीय युवा फैडरेशन की शाखाओं के माध्यम से करना चाहते थे। वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं को हम इसमें नहीं उलझाना चाहते थे, क्योंकि वे हमारी विशुद्ध शैक्षणिक संस्थाएँ थीं। और भी जो संगठन हमारे इस पवित्र कार्य में सहयोग करना चाहें, हमने उनका हृदय से स्वागत किया। प्रत्येक नगर की पंचायतें, स्वाध्याय सभाएँ, स्वयं-सेवक मंडलों से भी अनुरोध किया कि वे हमारे इस मंगल प्रयास में सहयोग करें।

पत्रकार-बन्धुओं एवं जैनसमाज के लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओं से भी हम इस कार्य में सहयोग चाहते थे, उन्होंने इस संदर्भ में सम्पादकीय लिखकर, अन्य लेखकों के लेख प्रकाशित कर, समाचारों को प्रकाशित कर हमारा सहयोग किया, जिनवाणी की सुरक्षा में अपना सहयोग प्रदान किया। व्यक्तिगत रूप से भी सभी शान्तिप्रिय बन्धुओं से हमने इस कार्य में सहयोग करने का हार्दिक अनुरोध किया।

हमने उन सभी स्थानों को संबंधित साहित्य एवं प्रपत्र भेजे थे,

जिनके पते हमारे पास थे। जिन मण्डलों, युवा फैडरेशन की शाखाओं को प्रपत्र प्राप्त नहीं हुए उन्होंने भी अपने यहाँ प्रार्थना-सभायें संचालित करने के लिए तत्काल पत्र लिखकर प्रचार सामग्री मँगा ली। यहाँ लगभग जितने लोग सम्मिलित होते थे, तदनुसार सामग्री भेजी जाती थी।

समाज की पंचायतें, अन्य संस्थाएँ तथा व्यक्ति भी इस सामग्री को मँगा सकते थे। यदि हमें सबका हार्दिक सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ तो हमें विश्वास था कि यह संकट भी क्षणिक ही सिद्ध होगा।

सम्पूर्ण स्थिति का सम्यक् अनुशीलन कर सभी साधर्मी भाइयों के चित्त शान्त हों, सभी अपनी भूलों की सम्यक् आलोचना करें, प्रतिक्रमण करें और भविष्य में उन्हें न दुहराने के लिए कृत-संकल्प हों, सभी में परस्पर वात्सल्यभाव जागृत हो, सभी निर्विघ्न आत्मा की साधना में संलग्न हों, आत्मा की आराधना में ही मग्न हों – इस पावन भावना के साथ यह कार्य किया। हमारे इस आन्दोलन की प्रक्रिया संबंधी सम्पादकीय जब महासमिति ने देखा तो उसने तत्काल प्रतिक्रिया जाहिर कहते हुए कहा कि महासमिति प्रयत्न करेगी कि उपद्रव, जिनवाणी के विरोध की प्रक्रिया समाप्त हो।

महासमिति की अनुकूल प्रतिक्रिया और सहयोग की भावना देखकर जिनवाणी-सुरक्षा समिति ने अभी आन्दोलन स्थगित करने का विचार किया और पण्डित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता की स्मृति में आयोजित शिक्षण-शिविर के अवसर पर दिनांक 24 जून, 1985 को वयोवृद्ध व्रती विद्वान पण्डित धन्नालालजी, ग्वालियर की अध्यक्षता में आयोजित प्रवचनकार सम्मेलन में सहस्राधिक जनता की उपस्थिति में जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन के संदर्भ में संचालन समिति की ओर से संयोजक श्री नेमीचंदजी पाटनी ने सम्पूर्ण स्थिति पर प्रकाश डालते हुए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसका समर्थन करते हुए मैंने महासमिति को जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक

एकता के कार्य में पूरा सहयोग देने की हार्दिक अपील की उपस्थित मुमुक्षु समाज से महासमिति के सदस्य बनने एवं सर्वप्रकार सक्रिय सहयोग देने की भी अपील की।

प्रस्ताव का अनुमोदन संचालन समिति के सदस्य, युवा फेडरेशन के अध्यक्ष व जतीशचन्द शास्त्री ने किया। अध्यक्ष महोदय ने भी हार्दिक समर्थन किया और करतल ध्वनि के बीच प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया। मूल प्रस्ताव इसप्रकार था –

जिनवाणी सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन के पावन उद्देश्य से सागर शिविर के अवसर पर सम्पन्न प्रवचनकार सम्मेलन में लिए गए सर्वसम्मत निर्णय के अनुसार संचालित आन्दोलन के प्रथम चरण में ही जिनवाणी–भक्त समाज का जो अभूतपूर्व समर्थन व सहयोग संचालन समिति को प्राप्त हुआ है, उसके लिए समिति जिनवाणी–भक्त समाज का आभार मानती है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी मात्र साधारण अपील पर एक माह के भीतर ही हमारे पास 4,417 लोगों के हस्ताक्षर पत्र आ गए हैं, जो हमारे इस अहिंसक अभियान में सम्मिलित होने के लिए कृत–संकल्प हैं। हमें यह बताते हुए भी प्रसन्नता है कि दिगम्बर जैन महासमिति ने हमारी भावनाओं को गहराई से अनुभव किया और इस बात पर किंचित् रोष भी व्यक्त किया कि जब महासमिति इस कार्य के लिए पहले से ही कृत–संकल्प है तो हम यह अलग अभियान क्यों आरंभ कर रहे हैं? महासमिति की इस सजगता के प्रति हम उसके हृदय से आभारी हैं। महासमिति की सतर्कता एवं वर्तमान शान्त स्थिति को देखते हुए संचालन समिति यह अनुभव करती है कि अभी इस अभियान को स्थगित कर दिया जाए।

अतः 24 जून, 1985 को टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता स्मृति समारोह के अवसर पर आयोजित प्रवचनकार सम्मेलन में संचालन समिति ने आन्दोलन को स्थगित करने

का प्रस्ताव किया तथा दिगम्बर जैन महासमिति के तिजारा अधिवेशन में पारित किए गए तत्सम्बन्धी प्रस्ताव एवं भावना को हार्दिक समर्थन देते हुए इस कार्य में अपने सम्पूर्ण सहयोग का आश्वासन भी दिया।

प्रस्तावक – नेमीचन्द पाटनी
संयोजक – जिनवाणी सुरक्षा व सामाजिक एकता आंदोलन समिति
समर्थक – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
निदेशक – जिनवाणी सुरक्षा व सामाजिक एकता आंदोलन समिति
अनुमोदक – ब्र. जतीशचन्द शास्त्री
सदस्य – जिनवाणी सुरक्षा व सामाजिक एकता आंदोलन समिति
हस्ताक्षर – अध्यक्ष प्रवचनकार सम्मेलन धन्नालाल जैन, ग्वालियर

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने भी अपनी मीटिंग में इस प्रस्ताव के अनुमोदन में एक प्रस्ताव पारित किया था।

अतिशयक्षेत्र देहरा–तिजारा में महासमिति के दिनांक 27–28 जुलाई, 1985 के अधिवेशन में पारित प्रस्ताव –

दिगम्बर जैन महासमिति के सदस्यों की श्री दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र तिजारा पर हुई यह सभा वीतराग तीर्थंकर देव, निर्ग्रन्थ गुरु एवं प्राचीन आचार्यप्रणीत एवं उनके मार्गानुसारी विद्वानों की वाणी पर पूर्ण आस्था प्रकट करती है और उसके प्रचार–प्रसार के लिए अपने को पूर्णतया समर्पित करती है।

यह भी निर्णय हुआ कि हमारे तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु और आचार्यों के ग्रन्थों की एवं उनके मार्गानुसारी प्रणीत विद्वानों की वाणी की अविनय एवं अवहेलना करना अनुचित है और उनकी रक्षा के लिए हम पूर्णतया प्रयास करेंगे। तिजारा दिनांक 28 जुलाई, 1985

इसप्रकार वह आन्दोलन स्थागित हो गया और समाज में बहुत कुछ वातावरण शान्त हो गया। ●

तेरहवाँ अध्याय

दिगम्बर जैन महासमिति और आचार्य कुन्दकुन्द वर्ष

"आश्चर्य की बात तो यह है कि कुन्दकुन्द ने साधुओं के लिए जो आचार संहिता निर्धारित की है, उससे लाखों कोस दूर शिथिलाचारी तो महासमिति को कुन्दकुन्द की मूलधारा में लगते हैं और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का गहरा अध्ययन कर जो समाज जागृत हो गया है और इसीकारण उनके शिथिलाचार को समर्थन देने के लिए तैयार नहीं है; उस जागृत समाज को कुन्दकुन्द की मूलधारा में आने के लिए आदेश दिया जा रहा था।"

"महासमिति को शिकायत है कि स्वामीजी के अनुयायी उनकी आवश्यकता से अधिक विनय करते हैं, पर जब आज दुनिया में चारों ओर अविनय की आग लग रही है, महासमिति सहित सभी को यह शिकायत है कि लोग अपने गुरुओं की आवश्यक विनय नहीं करते, विश्वविद्यालयों में तो अविनय के ताण्डव हो रहे हैं, तब कोई एक ऐसा श्रद्धा का स्थान भी है कि जहाँ सन्तुलित विनय की मूसलाधार बरसात हो रही है, इस पर महासमिति एवं दिगम्बर जैन समाज को गर्व होना चाहिए था, किन्तु इसके विपरीत विनय का स्वरूप न समझने के कारण महासमिति उन्हें अपने गुरु का उचित विनय नहीं करने को बाध्य कर रही है।"

दिगम्बर जैन महासमिति और आचार्य कुन्दकुन्द वर्ष

भगवान महावीर के पच्चीससौवें निर्वाण वर्ष की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि दिगम्बर जैन महासमिति, आज आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह वर्ष में विघटन के कगार पर पहुँच गई है। महावीर निर्वाण महोत्सव के बाद दिगम्बर जैन महासमिति की स्थापना के विचार-विमर्श हेतु पहली मीटिंग जो दिल्ली में बुलाई गई थी, उसमें मैं भी उपस्थित था।

उस समय सभी की भावना एक ही थी कि सभी अखिल भारतीय दिगम्बर जैन संगठन संस्थाएँ समाप्त कर एक ऐसी संगठन संस्था की स्थापना की जाए, जिसमें समाज के सभी वर्ग सम्मिलित हों, जो सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज का प्रतिनिधित्व करे और बिना किसी भेद-भाव के सभी को अपनी-अपनी श्रद्धानुसार धर्माचरण, धर्म-प्रचार करने में प्रोत्साहित करे, सहयोग करे।

साहू शान्तिप्रसादजी के दूरदर्शी नेतृत्व में गठित यह दिगम्बर जैन महासमिति तेजी से अपने उद्देश्य की पूर्ति में आगे बढ़ रही थी कि दिगम्बर जैन समाज के दुर्भाग्य से साहू शान्तिप्रसादजी के दूरदर्शी नेतृत्व की छत्रछाया उठ गई, पर अभी कुछ सद्भाग्य शेष था कि जिसके कारण साहू श्रेयांसप्रसादजी का नेतृत्व महासमिति को प्राप्त हो गया,

किन्तु अब वे भी शिथिल थे, तीव्र गति से बढ़ते सामाजिक वैषम्य को रोकने में अपने को असमर्थ पा रहे थे और महासमिति अकारण ही लड़खड़ाने लगी थी। अब तक वह किसी संस्था को अपने में मिला तो नहीं पाई, पर अब स्वयं विभक्त होने की स्थिति में पहुँच गई थी, जो संगठन-प्रेमी सम्पूर्ण समाज के लिए चिन्ता का विषय था।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के शुद्ध दिगम्बर जैनधर्म सम्मत विचारों की अनुयायी पाँच लाख दिगम्बर जैन समाज आदरणीय पण्डित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता के नेतृत्व में दिगम्बर जैन महासमिति के जन्म से ही उसके साथ रहा था।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के विचारों की समर्थक पाँच लाख दिगम्बर जैन समाज की स्थिति आदरणीय पण्डित बाबूभाईजी सहित तब भी वही थी, जो आज है। पर अब ऐसी क्या नई स्थिति उत्पन्न हो गई थी, जिसके कारण महासमिति को इसप्रकार का विघटनकारी प्रस्ताव लाना पड़ा?

दिगम्बर जैन महासमिति के कार्याध्यक्ष श्रीमान सेठ रतनलालजी गंगवाल भी आरंभ से ही महासमिति से जुड़े हुए हैं और सोनगढ़-जयपुर से भी उनके संबंध उतने ही पुराने हैं, जितने कि महासमिति से। आदरणीय बाबूभाईजी, गंगवालजी और पाटनीजी सभी मिल-जुलकर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं महासमिति का काम एक साथ करते रहे हैं। मैं भी आरम्भ से उनके साथ रहा हूँ और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा हूँ। सभी एक-दूसरे की श्रद्धा एवं मान्यता से पूर्णतः परिचित रहे हैं, पर पंद्रह वर्षों तक सबकुछ यथावत् चलता आ रहा था और कहीं भी कोई दुविधा खड़ी नहीं हुई थी। महासमिति के अन्य पदाधिकारी भी सम्पूर्ण स्थिति से पूर्णतः परिचित थे, फिर भी कहीं कोई विकल्प खड़ा नहीं हुआ; क्योंकि महासमिति की रीति-नीति ही यह

रही है कि किसी की व्यक्तिगत श्रद्धा व आस्था से महासमिति को कोई प्रयोजन नहीं है, महासमिति एक ऐसा संगठन मंच है, जहाँ दिगम्बर जैन धर्म में आस्था रखनेवाले सभी लोग बिना किसी भेद-भाव के संगठित होकर कार्य करते हैं।

यदि विगत पंद्रह वर्षों में महासमिति को कोई सैद्धान्तिक बाधा नहीं आई, तो अब अचानक यह बाधा कैसे खड़ी हो गई थी? हम अपने अन्तर में झाँककर देखें कि कहीं कोई व्यक्तिगत अनबन तो इसके मूल में नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि व्यक्तिगत कारणों से सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के इस महान संगठन को अपूरणीय क्षति उठानी पड़े।

यदि गहराई में जाकर देखें तो ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता कि जिसके कारण महासमिति को उक्त कदम उठाने को बाध्य होना पड़ा हो। यह बात तो महासमिति स्वयं ही स्वीकार कर रही थी कि उसके अनुरोध पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने अनेक सुधार किये हैं, फिर यह समझ में नहीं आता कि जब उसने ये सुधार नहीं किये थे, तब तो उसे साथ लेकर चला गया और उक्त सुधार हो जाने के बाद भी उसे नकारने का प्रयत्न किया जा रहा था।

समस्त मुमुक्षु समाज सदा से ही अपनी श्रद्धा और मान्यता में जैसा दृढ़ रहा था, तब भी वैसा ही था; जब उसमें कुछ परिवर्तन नहीं आया था तो फिर महासमिति के रुख में भी परिवर्तन क्यों? महासमिति के सामने ऐसी क्या मजबूरी थी कि उसे अपनी समन्वयवादी नीति को त्यागना पड़ा? इसकी गहरी समीक्षा महासमिति के कर्णधारों और अनुयायियों को खुले दिमाग से करनी चाहिए।

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी के इस मंगल वर्ष में आचार्य कुन्दकुन्द के अनन्य अनुयायी आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी में श्रद्धा रखनेवाले लाखों लोगों से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करके

महासमिति संत कुन्दकुन्द को कितनी सुन्दर श्रद्धांजलि समर्पित कर रही है, यह बात स्वयं महासमिति ही सोच ले।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि कुन्दकुन्द ने साधुओं के लिए जो आचार-संहिता निर्धारित की है, उससे लाखों कोस दूर शिथिलाचारी तो महासमिति को कुन्दकुन्द की मूलधारा में लगते थे और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का गहरा अध्ययन कर जो समाज जागृत हो गया है और इसीकारण उनके शिथिलाचार को समर्थन देने के लिए तैयार नहीं है; उस जागृत समाज को कुन्दकुन्द की मूलधारा में आने के लिए आदेश दिया जा रहा था।

आचार्य कुन्दकुन्द की मूलधारा में कौन है और कौन नहीं, इसे जानने के लिए कुन्दकुन्द के साहित्य का गहरा अध्ययन अपेक्षित है, जिसका महासमिति के कर्णधारों में नितान्त अभाव था। शिथिलाचार को समाप्त करने का एकमात्र उपाय कुन्दकुन्द द्वारा निर्धारित आचार-संहिता को सरल-सुबोध भाषा में जन-जन तक पहुँचाना ही है। इस काम में संलग्न पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट शिथिलाचार के पोषकों को सुहा नहीं रहा था। यही एक कारण प्रतीत होता है, उसके विरुद्ध इस आक्रमण का।

आज जब महासमिति और महासभा उन्हीं शिथिलाचार के सहारे जन-समर्थन जुटाने में व्यस्त है, तब उनसे इस दिशा में क्या अपेक्षा की जा सकती है? चौथी दुनिया में छपे दिगम्बर मुनि के अनाचार संबंधी लेख के विषय में सभी मौन हैं, किसी की एक शब्द भी लिखने-बोलने की हिम्मत नहीं है।

यदि वह बात असत्य है तो चौथी दुनिया के विरुद्ध और यदि सत्य है तो शिथिलाचार और अनाचार के विरुद्ध इन अखिल भारतीय संगठनों द्वारा कुछ न कुछ अवश्य किया जाना चाहिए था, पर इसके

लिए जिस नैतिक साहस और इच्छाशक्ति की आवश्यकता है, वह कहीं दिखाई नहीं देती।

महासमिति को शिकायत है कि स्वामीजी के अनुयायी उनकी आवश्यकता से अधिक विनय करते हैं, पर जब आज दुनिया में चारों ओर अविनय की आग लग रही है, महासमिति सहित सभी को यह शिकायत है कि लोग अपने गुरुओं की आवश्यक विनय नहीं करते, विश्वविद्यालयों में तो अविनय के ताण्डव हो रहे हैं, तब कोई एक ऐसा श्रद्धा का स्थान भी है कि जहाँ सन्तुलित विनय की मूसलाधार बरसात हो रही है, इस पर महासमिति एवं दिगम्बर जैन समाज को गर्व होना चाहिए था; किन्तु इसके विपरीत विनय का स्वरूप न समझने के कारण महासमिति उन्हें अपने गुरु का उचित विनय भी नहीं करने को बाध्य कर रही है। सचमुच तो यह सब उन महापुरुष द्वारा दिये गये उस सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का ही परिणाम है, जो अन्यत्र कहीं भी दिखाई नहीं देता।

यद्यपि यह अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है कि वे साधु नहीं थे, अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक थे; वे भी ऐसा ही मानते थे; तथापि लगातार यह कहा जा रहा है कि उन्हें साधु के रूप में स्थापित किया जा रहा है।

कौन किसकी कितनी विनय करता है इसका निर्धारण व्यक्ति की श्रद्धा ही करती है, इसे आदेशों से निर्धारित करना न तो संभव ही है और न उचित प्रतीत होता है।

महासमिति का यह आग्रह कि समुदाय विशेष को किसकी कितनी विनय करनी चाहिए, न तो उसकी सभी को साथ लेकर चलने की रीति-नीति के अनुकूल है और न ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का सन्मान करनेवाली है।

सम्माननीय साहू श्रेयांसप्रसादजी दिगम्बर जैन समाज के विश्वसनीय वयोवृद्ध नेता हैं, उनके कार्यकाल में ही महासमिति अपनी

घोषित नीति से हट जाए और विघटित हो जाए; यह उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। एक सुयोग ही रहा कि वे अपने स्वास्थ्य के कारण उक्त मीटिंग में उपस्थित नहीं हो सके। यह सुयोग मात्र उनको ही नहीं, आदरणीय श्री बाबूलालजी पाटोदी को भी सहज ही मिल गया। वे दिगम्बर जैन समाज के एक कर्मठ नेता हैं और सामाजिक एकता के जबर्दस्त समर्थक आचार्य विद्यानन्दजी महाराज के अनन्य अनुयायी हैं; यदि उनकी उपस्थिति में यह अनर्थ होता तो विद्यानन्दजी महाराज की पावन भावना की ही अवहेलना होती।

दोनों ही महानुभावों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि समाज एवं महासमिति के हित में वे गंभीरता से विचार करें।

आदरणीय रतनलालजी गंगवाल तो आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अनन्य अनुयायी रहे हैं, उनके पिताजी भी उनके अनुयायी रहे हैं। वे तो सम्पूर्ण स्थितियों से पूर्णतः परिचित हैं, महासमिति के भावी कर्णधार हैं; उनकी अध्यक्षता में सम्पन्न पहली ही मीटिंग में इस प्रस्ताव का पारित होना सिर मुँड़ाते ही ओले पड़ने जैसा कार्य है। इतिहास का यह काला पृष्ठ उनके नेतृत्व में न लिखा जाए - इसके लिए उनसे जो भी बने, उन्हें अवश्य करना चाहिए।

इसीप्रकार साहू अशोककुमारजी भी अभी समाज में नये-नये आये हैं। वे समाज के दूरदर्शी नेता स्व. श्री शान्तिप्रसादजी के सुयोग्य सुपुत्र हैं, स्वभाव से गंभीर हैं, उनसे समाज को बहुत कुछ आशायें हैं, उन्हें भी अपने आरंभिक सामाजिक जीवन में ऐसे घातक कदम नहीं उठाने चाहिए, जो मात्र उनके व्यक्तित्व के लिए ही नहीं समाज के लिए भी घातक हों।

आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज एवं आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से भी विनम्र अनुरोध करता हूँ कि वे भी इस अप्रिय प्रसंग के

सन्दर्भ में महासमिति का मार्गदर्शन करें। इष्टानिष्ट प्रसंगों में पूर्णतः असंग रहनेवाले सन्तों को यह कैसे स्वीकार हो सकता है कि समाज सन्तों को मानने न मानने की चर्चा के आधार पर विभक्त हो जाए।

उद्वेलित मुमुक्षु समाज से भी मेरा विनम्र अनुरोध है कि वह उत्तेजना में ऐसा कोई कदम न उठाये, जिससे फिर पीछे मुड़ना संभव न हो। यद्यपि यह सत्य है कि उक्त प्रस्ताव ने समस्त मुमुक्षु समाज को झकझोर दिया है, उसे अन्दर-बाहर से उद्वेलित कर दिया है और वह गहराई से यह अनुभव करने लगा है कि अपना एक स्वतंत्र सामाजिक संगठन न होने से ही यह स्थिति उत्पन्न हुई है।

सहज सात्विक वृत्तिवाले आत्मार्थी मुमुक्षु भाई अनेक संकटों को झेलते हुए भी अपने स्वाध्यायादि कार्यों में ही संलग्न रहे हैं। विगत वर्षों में उनके साथ क्या-क्या नहीं हुआ? उनके द्वारा स्थापित देव मूर्तियों की विडम्बना, उनके द्वारा प्रकाशित जिनवाणी का अनेक प्रकार से विध्वंस, उनके श्रद्धास्पद आध्यात्मिक शिक्षा गुरु श्री कानजीस्वामी के विरुद्ध निरन्तर विषवमन, अनर्गल प्रलाप और स्वयं उनके साथ अभद्र व्यवहार।

यह सब होता रहा, पर वह महासमिति, जिसके लिए उसने आरंभ से ही अपना समर्थन दिया था, सर्वप्रकार सहयोग दिया था, उसके हर काम में हाथ बँटाया था; मूकदर्शक बनी रही। बहलाने के लिए उसके पास एकमात्र तिजारा में पास हुआ प्रस्ताव था, जिसे समय-समय पर दुहराती रही; रोते हुए मुमुक्षु समाज के बालकमन को टॉफी के रूप में दे-देकर बहलाती रही और उसके बदले में अपनी माँगें पेश करती रही, अनावश्यक दबाव डालती रही।

जब-जब भी कोई संकट आता, तब-तब महासमिति कुछ सहयोग करने के बजाय अपनी माँग ही पेश करती रही है। मुमुक्षु समाज

से जो भी बना, उन्हें देती रही; उनके कहने से ट्रस्ट डीड में आवश्यक परिवर्धन किया गया, और भी बहुत कुछ किया गया; जिसे महासमिति भी स्वीकार करती है कि उसके कहने से हमने बहुत कुछ सुधार किये हैं, पर उसकी माँगें पूरी न हुईं और उसका मन बढ़ता ही गया तथा आज इस रूप में वह सामने आ गई कि अब वह हमारी श्रद्धा भी लूटना चाहती है। समझ में नहीं आता कि महासमिति समाज की विघटनकारी संस्थाओं के सामने बिलकुल मौन दर्शक रहकर एकमात्र पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के समक्ष ही नई–नई माँगें रखकर इस संस्था से कौन–सी कीमत वसूल करना चाहती है ?

मुमुक्षु समाज का यह स्पष्ट कहना है कि जो दिया जा सकता था, दिया जा चुका है, अब कुछ भी ऐसा नहीं है, जो दिया जा सके। अतः अब तो पूरी तरह अपने ही पैरों पर खड़ा होना है – यह चिन्तन है सम्पूर्ण समाज का और इसी का परिणाम है देवलाली में पास हुआ प्रस्ताव, जिसमें एक नवीन सामाजिक संगठन बनाने का विचार व्यक्त किया गया है।

मुमुक्षुसमाज की भावना के साथ पूरी तरह सहमत होते हुए भी मैं उनसे विनम्र अनुरोध करना चाहता हूँ कि जल्दबाजी में कुछ भी न करें, क्योंकि हाथी के दाँत जब एक बार बाहर आ जाते हैं तो फिर वापस भीतर नहीं जाते। अतः तत्काल कुछ न करके कुछ समय बीतने दें, क्योंकि कषाय से उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ समय बीतने पर स्वयं समाप्त हो जाती हैं।

प्रत्येक समाज में मान्यताएँ पूर्णतः एक–सी होने पर भी उनके क्रियान्वयन के संबंध में दो विचारधारायें होती हैं – एक कट्टरपंथी और दूसरी समायोजन कर चलनेवाली। जब समायोजन कर चलनेवाली विचारधारा कमजोर पड़ जाती है तो कट्टरपंथी विचारधारा हावी हो

जाती है। ऐसी स्थिति में समायोजन कर चलनेवाली धारा ने जो भी उपलब्ध किया होता है, वह भी समाप्त हो जाता है।

यदि महासमिति ने अपनी रीति-नीति पर पुनर्विचार नहीं किया तो लगता है एक अलग सामाजिक संगठन बनना अनिवार्य हो जाएगा। ऐसी स्थिति में महासमिति के अनुरोध पर समायोजन कर चलनेवाली धारा ने जो भी उपलब्ध किया है, वह सब समाप्त हो जाएगा। शिथिलाचार के विरुद्ध वातावरण जो अभी अपनी मर्यादा में है, वह भी निरंकुश हो जाएगा।

महासमिति को यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यद्यपि समाज साधु-संतों के प्रति समर्पित है, तथापि शिथिलाचार के विरुद्ध भी उसके मन में तीव्र असंतोष है, जो दिन-प्रतिदिन निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है; अतः शिथिलाचार के विरुद्ध खड़ा होनेवाला संगठन भी अशक्त नहीं रहेगा; शिथिलाचार विरोधी सन्तों का सहयोग भी उसे मिलेगा ही।

हमारी मंगल भावना तो यही है कि संगठन का कार्य महासमिति ही करे और हम तो अपनी सम्पूर्ण शक्ति वीतरागी-तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में ही लगाएँ। हमारा चित्त विभक्त न हो – यह उपकार महासमिति हम पर कर सके तो अवश्य करे।

आज जब सम्पूर्ण दुनिया एक-दूसरे की प्रभुसत्ता स्वीकार करते हुए संगठित हो रही है, सभी परस्पर में समन्वय स्थापित कर रहे हैं; जैन समाज के स्तर पर भी सभी प्रकार के जैनों की एकता की बात चल रही है, सभी एक दूसरे के समीप आ रहे हैं; तब ऐसे समय में महासमिति विघटित हो जाए – यह कोई गौरव की बात नहीं होगी।

इस विघटन के जिम्मेदार लोगों को इतिहास कभी माफ नहीं करेगा। एकता आज के युग की पुकार है, उसे जो नहीं सुनेगा, जो नहीं

समझेगा; उसे इतिहास या तो भुला देगा या फिर विघटनकारी शक्तियों के रूप में याद करेगा।

हम इतिहास के काले पृष्ठ नहीं, स्वर्णिम पृष्ठ बनें – इस मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ और संबंधित सभी व्यक्तियों से एक बार फिर विनम्र अनुरोध करता हूँ कि उठाये गये कदमों के संदर्भ में एक बार पुनः ठंडे दिमाग से विचार करें। ●

"जो भी धार्मिक क्षेत्र में कार्य करने वाले लोग हैं,
उन्हें परस्पर लड़ने के स्थान पर मिलकर
अज्ञान से, अशिक्षा से लड़ना चाहिए;
इसम ही समाज का भला है,
संस्थाओं का भला है,
धर्म का भला इसी में है।।"

"शब्दों की भाषा से
मौन की भाषा किसी भी रूप में
कमजोर नहीं होती,
बस उसे समझने वाला चाहिए।"

"स्पष्ट विचार एवं प्रामाणिक आधार
मेरे जीवन की निधियाँ हैं।"

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

चौदहवाँ अध्याय

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की रीति-नीति

परमपूज्य भगवान ऋषभदेवादि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित, परमपूज्य आचार्य श्री भूतबली, पुष्पदन्त, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्रादि आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध और पं. बनारसीदासजी, पं. टोडरमलजी, पं. दौलतरामजी, पं. जयचंदजी एवं श्री कानजी स्वामी आदि द्वारा व्याख्यायित (विशेष स्पष्टीकृत) वीतरागी दिगम्बर जिनधर्म का प्रचार-प्रसार करना ही इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य है।

यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि इस ट्रस्ट के मूल प्रेरणास्त्रोत पूज्य श्री कानजी स्वामी हैं, तथा ट्रस्ट का उद्देश्य भी उनके द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक क्रान्ति को बल प्रदान करना है; अतः ट्रस्ट किसी भी स्थिति में उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता; यहाँ तक ही नहीं, यह ट्रस्ट हर परिस्थितियों में उनकी छवि को धूमिल करने वाले प्रयासों को निष्प्रभावी करने का पूरा-पूरा प्रयास करेगा, उनके व्यक्तित्व एवं कार्यों को उजागर करने का भी प्रयास करेगा।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की रीति-नीति

दिगम्बर जैन महासमिति के आगरा प्रस्ताव एवं दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज के देवलाली प्रस्ताव के सन्दर्भ में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की श्री सुशीलकुमारजी गोदीका की अध्यक्षता में दिनांक 28 अगस्त, 1986 को हुई मीटिंग में रीति-नीति स्पष्टीकरण का जो प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ था, समस्त सधर्मप्रेमी समाज की जानकारी हेतु उसे वीतराग-विज्ञान मासिक में प्रकाशित किया गया, जिससे किसी को कोई भ्रम न रहे। प्रस्ताव मूलत: इसप्रकार है –

ट्रस्ट मण्डल की यह मीटिंग श्री दिगम्बर जैन महासमिति के तारीख 21-30 अप्रैल, 1982 को आगरा में आयोजित अधिवेशन में पारित प्रस्ताव एवं उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप अखिल भारतीय मुमुक्षु समाज के द्वारा तारीख 24 मई, 1989 को देवलाली में पारित प्रस्ताव तथा उससे उत्पन्न हुई दिगम्बर जैन समाज की प्रतिक्रिया तथा दिगम्बर जैन महासमिति के अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष एवं महामंत्री महोदय आदि के स्पष्टीकरणों को पढ़कर, समझकर एवं गम्भीरता से विचारकर निम्नप्रकार अपनी स्थिति स्पष्ट करती है –

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एक सार्वजनिक पंजीकृत ट्रस्ट है, जिसकी स्थापना पूज्य श्रीकानजीस्वामी की पावन प्रेरणा से मेरे (पूरणचंदजी गोदीका) एवं मेरे परिवार द्वारा 1964 में हुई थी। ट्रस्ट के

संविधान में यह स्पष्ट उल्लेख है कि वीतरागी दिगम्बर जिनधर्म का वह अनुयायी ही इस ट्रस्ट का ट्रस्टी हो सकता है, जिसका पूज्य श्रीकानजीस्वामी एवं उनके द्वारा प्रवाहित अध्यात्मधारा में पूर्ण विश्वास है। इसका मुख्य उद्देश्य इसप्रकार है –

परमपूज्य भगवान ऋषभदेवादि महावीर–पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित, परमपूज्य आचार्य श्री भूतबली, पुष्पदन्त, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्रादि आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध और पण्डित बनारसीदासजी, पण्डित टोडरमलजी, पण्डित दौलतरामजी, पण्डित जयचंदजी एवं श्री कानजीस्वामी आदि द्वारा व्याख्यायित (विशेष स्पष्टीकृत) वीतरागी दिगम्बर जिनधर्म का प्रचार–प्रसार करना ही इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य है।

इस उद्देश्य के सहयोगी भी अनेक उद्देश्य हैं, जिनमें उक्त वीतरागी जिनधर्म के प्रचार–प्रसार करने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं आदि को सहयोग करना, जिनधर्म के अध्ययन–अध्यापन की सुविधाएँ जुटाना, वीतरागी साहित्य प्रकाशित करना आदि मुख्य हैं। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह ट्रस्ट निरन्तर गतिशील रहा है। इसकी गतिशीलता और इसके कार्यों का लेखा–जोखा समाज के सामने है।

इसकी वीतरागी तत्त्वप्रचार संबंधी गतिविधियों से यद्यपि देश–विदेश का सम्पूर्ण जैन समाज लाभान्वित होता रहा है; तथापि इस युग में वीतरागी जिनधर्म में जो आध्यात्मिक क्रान्ति पूज्यश्री कानजीस्वामी द्वारा प्रवाहित हुई है, उससे सम्बन्धित समस्त मुमुक्षु समाज इस संस्था की गतिविधियों से भरपूर लाभ लेता रहा है, उसका सम्पूर्ण सहयोग भी इस संस्था को सदा प्राप्त रहा है।

इसप्रकार यह ट्रस्ट मूलतः धार्मिक ट्रस्ट है, जो अपने उद्देश्यों से बँधा है। समस्त आत्मार्थी मुमुक्षु समाज की आध्यात्मिक, धार्मिक

गतिविधियों को गति प्रदान करना इसका परम कर्त्तव्य है, जिसे यह बड़ी ही सावधानी से आज तक निभाता रहा है।

उपर्युक्त समस्त परिस्थितियों की जानकारी महासमिति के शीर्षस्थ नेताओं को प्रारम्भ से ही रही है। महासमिति के कार्याध्यक्ष श्री रतनलालजी गंगवाल तो इस ट्रस्ट के ट्रस्टी भी हैं, वे तो सभी बातों से गहराई से परिचित हैं।

इसप्रकार ट्रस्ट की रीति-नीति स्पष्ट है तथा अनेक बार स्पष्ट भी की जा चुकी है, तथापि यह आग्रह है कि ट्रस्ट अपनी रीति-नीति स्पष्ट करे, अतः यह स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि इस ट्रस्ट के मूल प्रेरणास्रोत पूज्य श्री कानजीस्वामी हैं तथा ट्रस्ट का उद्देश्य भी उनके द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक क्रान्ति को बल प्रदान करना है; अत: ट्रस्ट किसी भी स्थिति में उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता; यहाँ तक ही नहीं, यह ट्रस्ट हर परिस्थिति में उनकी छवि को धूमिल करने वाले प्रयासों को निष्प्रभावी करने का पूरा-पूरा प्रयास करेगा, उनके व्यक्तित्व एवं कार्यों को उजागर करने का भी प्रयास करेगा।

जहाँ तक भारत भर से आई मुमुक्षु समाज के द्वारा देवलाली में पारित प्रस्ताव का प्रश्न है, उससे इस ट्रस्ट को जोड़ना इस ट्रस्ट के प्रति अन्याय है। ट्रस्ट के ट्रस्टीगण एवं कार्यकर्त्तागण अपना-अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं, वे अपनी-अपनी श्रद्धा-भावना के अनुसार कार्य करने के लिये स्वतंत्र हैं। उनकी व्यक्तिगत मान्यता में ट्रस्ट का कोई हस्तक्षेप नहीं है। अत: किसी की व्यक्तिगत आस्थाओं को आधार बनाकर ट्रस्ट को जिम्मेवार ठहराना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

देवलाली का प्रस्ताव मुमुक्षु समाज का है, वे अपने निर्णय करने के लिये स्वतंत्र हैं। लेकिन यह ट्रस्ट अपने उद्देश्यों के अनुसार उक्त मुमुक्षु

भाइयों एवं समाज को तथा इस ट्रस्ट के उद्देश्यों के कार्यों की पूर्ति के कार्यों में संलग्न हर एक व्यक्ति एवं कार्य की अपनी पूर्ण सामर्थ्य के द्वारा हर प्रकार की सहायता करने के लिये प्रतिबद्ध है, अतः अपने सम्पूर्ण साधनों से मुमुक्षु समाज की भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाना ट्रस्ट की गतिविधियों का ही एक कार्य है। ट्रस्ट से संबंधित पत्रों में उक्त सन्दर्भ में जो भी सामग्री प्रकाशित हुई है, वह सब ट्रस्ट की उक्त भावना के ही अनुरूप है।

यह ट्रस्ट अपनी रीति-नीति को पुनः घोषित करता हुआ ट्रस्टियों, ट्रस्ट के निर्देशक डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल तथा सभी कार्यकर्त्ताओं एवं सभी सहयोगियों से निवेदन करता है कि वे भविष्य में भी इसी उत्साह से कार्य करते रहें, ताकि वीतरागी दिगम्बर जिनधर्म के अध्ययन, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन आदि की प्रवृत्ति को विशेषरूप से प्रोत्साहन प्राप्त होता रहे।

प्रस्तावक – पूरणचंद गोदीका

समर्थक – महेन्द्रकुमार सेठी •

**"हमारी नीति
वाद-विवादों में उलझने की
न कभी रही है और न रहेगी।"**

**"अनुशासन-प्रशासन हृदय से नहीं;
बुद्धि से चलते हैं।"**

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अधूरी उल्टी आत्मकथा

पंद्रहवाँ अध्याय

एक ही रास्ता

सूर्यकीर्ति की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के नाम पर आगम के आधार बिना जो भी हुआ है, हम उसे रंचमात्र भी उचित नहीं मानते, पर पूज्य स्वामीजी का इसमें कोई योग नहीं है, क्योंकि भोगीभाई द्वारा इसप्रकार की चर्चा आने पर उन्होंने बड़ी ही दृढ़ता से इसका निषेध कर दिया था। इस बात को जैनपथ प्रदर्शक में पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। हम उनके सच्चे अनुयायी हैं। हमने उनसे वीतरागी तत्त्व पाया है, क्रमबद्धपर्याय का पाठ पढ़ा है, उनकी उपेक्षा हमसे संभव नहीं है, उनका अपमान हमें बर्दाश्त नहीं है और न कभी होगा।

इस नाजुक स्थिति का लाभ उठाकर कुछ लोग पावन जिनवाणी को मन्दिरों से हटाने एवं जलप्रवाह करने की बातें करने लगे हैं, इसके लिए समाज को उकसाने भी लगे हैं। पहले भी इसप्रकार के प्रयास किए गए थे, पर वे सफल नहीं हुए, आगे भी इसप्रकार के कार्यों का यही हाल होनेवाला है। क्या समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक को मात्र इसी आधार पर बहिष्कृत किया जा सकता है कि वे सोनगढ़ या जयपुर से प्रकाशित हुए हैं? क्या इसमें आचार्य कुन्दकुन्द और पंडित टोडरमलजी का अपमान नहीं होगा?

एक ही रास्ता

'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की' किसी भुक्तभोगी की उक्त उक्ति का मर्म तबतक समझ में नहीं आता, जबतक कि इसीप्रकार की परिस्थितियों से व्यक्ति स्वयं नहीं गुजरता। आगम के सम्मान एवं सामाजिक एकता की अनदेखी करने वाले लोग जब घर-फूँक तमाशा देखने पर उतारू हो जाते हैं तो अड़ोसी-पड़ौसी भी उस आग में स्वार्थ की रोटियाँ सेकने लगते हैं। केवल व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए मौके की तलाश में बैठे असामाजिक तत्त्व जब उस आग को बुझाने के बहाने पानी के नाम पर जलते हुए सामाजिक ढाँचे पर पेट्रोल डालने लगते हैं, तब समझदार लोगों के पास आत्मशुद्धि के लिए प्रभु से प्रार्थना एवं आत्माराधना के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं रह जाता है।

समाज के प्रबुद्धवर्ग का कार्य गहराई में जाकर वस्तुस्थिति का गहरा अध्ययन करके यथासाध्य सम्यक् मार्गदर्शन करना है, पर जब प्रबुद्धवर्ग भी अपने इस उत्तरदायित्व से विमुख होने लगे और समाज में उत्तेजना फैलाने का घृणित कार्य करने लगे तो समझना चाहिए कि अब समाज के बुरे दिन आने वाले हैं।

ऐसी स्थिति में चित्त का संतुलन बनाए रखना यद्यपि अत्यन्त कठिन कार्य है, तथापि सन्तुलन खोकर सर्वविनाश की ओर बढ़ना बुद्धिमत्ता तो नहीं माना जा सकता।

यद्यपि जलती हुई द्वारका देखकर भी श्री नेमिनाथ के समान, सहज ज्ञातादृष्टा बने रहना ही अध्यात्म की चरम उपलब्धि है; तथापि जिस

भूमिका में हम और आप विद्यमान हैं, उसमें यह सब संभव नहीं है, उचित भी नहीं है, आवश्यक भी नहीं है।

हमारे ही साथियों की अपरिमित हठधर्मी से जो स्थिति आज पैदा हो गई है, उससे सम्पूर्ण समाज उद्वेलित है, आन्दोलित है। सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज की इस पीड़ा से आज कोई भी अपरिचित नहीं है। हमारी स्थिति तो और भी अधिक गंभीर है, क्योंकि इस घटनाचक्र के सम्पूर्णतः अकर्त्ता होने पर भी हमें इस तूफान का केन्द्रबिन्दु-सा बना दिया गया है। जिन्हें आगम के आधार, सामाजिक एकता एवं पूज्य श्रीकानजीस्वामी की पावन प्रतिष्ठा की कोई चिन्ता नहीं है, वे लोग समग्र समाज की सहानुभूति एवं स्नेह खोकर भी अपने में ही मग्न हैं एवं विजयी मुद्रा में जो कुछ भी मन में आ रहा है, बिना सोचे-समझे निरन्तर किये जा रहे हैं और स्वामीजी के व्यक्तित्व से ईर्ष्या करने वाले लोगों को निरन्तर ऐसी निराधार सामग्री प्रदान कर रहे हैं कि जिससे उन्हें उत्तेजना फैलाने में भरपूर मदद मिल रही है।

ऐसी स्थिति में इस उत्तेजित वातावरण में जगत से दृष्टि हटाकर अपने कार्य में ही मग्न हो जाने के हमारे सम्पूर्ण संकल्प एवं निश्चय डगमगा रहे हैं। चारों ओर से हमारे पास अपनी स्थिति स्पष्ट कर देने के लिए आग्रह, अनुरोध आ रहे थे। पर भाईसाहब! स्थिति तो स्पष्ट ही है। इस समग्र घटनाचक्र से परिचित ऐसा कौन व्यक्ति है जो हमारी स्थिति एवं विचारों से अपरिचित है? वस्तुतः बात स्थिति स्पष्ट करने की नहीं, समाज चाहता है कि हम इस दिशा में सम्पूर्णतः सक्रिय हों।

पर भाई, हम क्या करें? क्या आप यह समझते हैं कि बात यहाँ तक न पहुँचे – इसके लिए हमने कोई कम प्रयत्न किए हैं; पर जब कोई आत्मघात करने पर ही उतारू हो जाए तो हम क्या कर सकते थे? बहुत भाई कहते हैं कि हमारे साथियों को त्याग-पत्र नहीं देना चाहिए था,

हमें अदालत में जाना चाहिए था, सत्याग्रह करना चाहिए था। पर भाईसाहब! हमने अपना जीवन अध्यात्म के लिए समर्पित किया है, झगड़ा-झंझटों के लिए नहीं। दूसरी बात यह भी तो है कि जब हम इसके लिए संघर्ष कर रहे थे, तब लोग कहते थे कि हम सत्ता एवं पैसे के लिए लड़ रहे हैं। कुछ लोग तो आज भी यह रट लगा रहे हैं, जबकि हम वहाँ की समस्त गतिविधियों से एकदम ही अलग हो गए।

मेरे हाथ में अभी एक लम्बा-चौड़ा प्रिंटेड पैम्फलेट है, जिसमें लिखा है कि श्री भारिल्लजी के लिए यह लड़ाई पद, कुर्सी व पैसे के लिए चम्पाबहिन से है, पर मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि न तो बहिनश्री को ही पद, कुर्सी और पैसा चाहिए और न हमें, यह सब तो हमारे पक्ष के त्यागपत्र दे देने से ही स्पष्ट है। हाँ, यह बात अवश्य है कि कुछ मनमानी करने वाले सत्तालोलुपी लोग स्वामीजी के प्रताप से बने नये दिगम्बरों में बहिनश्री की अपरिमित प्रतिष्ठा का अनुचित लाभ अवश्य उठा रहे हैं।

संघर्ष का आरंभ धन्यावतार से प्रारंभ हुआ और सूर्यकीर्ति-प्रकरण में चरम बिन्दु पर पहुँच गया। दोनों ही प्रकरणों में हमने पूरी शक्ति लगाकर रोकने का प्रयत्न किया और न रुकने पर समाज के सामने समय रहते सब-कुछ स्पष्ट कर दिया। इन दोनों के बीच की भी छोटी-बड़ी बहुत-सी बातें हैं, जिनकी चर्चा न तो आवश्यक ही है और न हमें अभीष्ट ही है।

स्वामीजी का जीवन भर विरोध करने वाले एक विद्वान हमसे बोले - ''डॉ. साहब, कृपा कर धन्यावतार जैसी दो-चार पुस्तिकाएँ और निकलवा दीजिए तो हमारा काम सरल हो जाए।''

हमने गंभीरता से उनसे कहा - ''आप क्या कार्य सरल करना चाहते हैं? पूज्य स्वामीजी तो गए, उनका तो भला-बुरा अब कुछ होना

नहीं है। उनके प्रताप से जो हजारों भाई दिगम्बर जैन बने हैं, क्या उन्हें आप अपने से अलग होने को बाध्य कर देना चाहते हैं?

हमारे मन्दिरों में माली काम करते हैं। सात-सात पीढ़ी से वे हमारे मन्दिरों की सेवा करते आ रहे हैं, पर आजतक हम एक माली को भी जैन नहीं बना सके हैं, और स्वामीजी के प्रताप से हजारों पक्के दिगम्बर जैन बन गए हैं।

यदि हम किसी को नया जैन नहीं बना सकते तो कम-से-कम उन्हें तो दिगम्बर जैन बना रहने दें, जो स्वामीजी के प्रताप से बने हैं। उन्होंने हमारी बात को गंभीरता से सुना ही नहीं, सहमति भी व्यक्त की। बाद में बोले - ''आपकी बात तो वे लोग मानते हैं, आप उन्हें समझाते क्यों नहीं, ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन से आप उन्हें रोकते क्यों नहीं?''

हमने कहा - ''भाई, क्या बतायें? हम तो अपनी शक्ति अनुसार सब करते हैं, पर जो संभव होता है, वही हो पाता है।''

सूर्यकीर्ति-प्रकरण में महासमिति ने जिस धैर्य से काम किया है, उसकी जितनी सराहना की जाए, उतनी ही कम है। महासमिति के अध्यक्ष श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी एवं कार्याध्यक्ष श्री रतनलालजी गंगवाल ने इसमें पूरी तत्परता, बुद्धिमानी एवं धैर्य से काम किया है, किसी भी स्थिति में अपना सन्तुलन नहीं खोया है, यह हमारी समाज के लिए गौरव की बात है। यदि समाज के सर्वोच्च पदों पर आसीन लोग ही सन्तुलन खो बैठें तो फिर समाज का क्या होगा? - यह समझने की बात है।

खेद की बात तो यह है कि महासमिति के शिष्टमण्डल को सोनगढ़ से खाली हाथ लौटना पड़ा। मैं निश्चितरूप से कह सकता हूँ कि यदि पूज्य स्वामीजी होते तो यह शिष्टमण्डल कभी भी खाली हाथ नहीं लौटता। पर भाई, असली बात तो यह है कि शिष्टमण्डल को जाने की

आवश्यकता ही नहीं पड़ती, क्योंकि स्वामीजी के माध्यम से यह कार्य तो हम ही निपटा लेते अथवा स्वामीजी की उपस्थिति में इसप्रकार का अदूरदर्शी कार्य प्रारंभ ही नहीं होता।

ऐसी स्थिति में भी महासमिति ने किसी भी प्रकार की मर्यादा को भंग नहीं किया, यह उनकी महानता एवं सदाशयता को सूचित करता है।

महासभा के कर्णधार एक ऐसे व्यक्ति के कथन के आधार पर जो मूलतः अजैन हैं, जिनका संपूर्ण परिवार आज भी अजैन है, कुछ ऐसी बेसिर-पैर की बातों का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, जिनसे सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज का ही अहित होने वाला है। जब कोई अजैन व्यक्ति जैन धर्म में रस लेने लगता है, तो उसे जैन समाज का वात्सल्य सहज ही प्राप्त हो जाता है। उसे जन्मजात जैनों से अधिक मान-सम्मान मिलने लगता है। इस स्थिति और वर्तमान परिस्थिति का लाभ उठाकर वे अजैन बन्धु आज सोनगढ़ की रीति-नीति के प्रवक्ता बन बैठे हैं।

वे न तो पूर्णतः दिगम्बर परम्पराओं से ही परिचित हैं और न श्वेताम्बर परम्पराओं से ही। वे जैन परम्परा से ही परिचित नहीं हैं तो फिर दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्पराओं से परिचित होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

आदरणीय साहूजी एवं उनके साथ गये शिष्टमण्डल से भी उन अजैन बन्धु ने इसी प्रकार की पृथक्तावादी बातें की थीं; पर उन्होंने उनकी बातों को कोई महत्त्व नहीं दिया, महासभा के कर्णधार उन्हें तूल देकर न मालूम क्या करना चाहते हैं? यह सब हमारी समझ से परे है। महासभा वाले धर्मबन्धु उनके अविश्वसनीय कथनों का निरन्तर प्रचार-प्रसार कर रहे हैं एवं उनके आधार पर उनके बहिष्कार की चर्चा भी बड़े जोर-शोर से चला रहे हैं। वे पृथक् होना चाहते हैं और ये पृथक् करना चाहते हैं। यदि समाज में इन्हीं लोगों की चली तो क्या होगा ? - यह सहज ही समझा जा सकता है।

क्या समाज का हित इसी में है? समाज को गंभीरता से इस बात पर विचार करना चाहिए।

महासभा वालों की उदारता की चर्चा हम कहाँ तक करें? अतिथियों को खाली हाथ वापिस भेजना, उन्हें अभीष्ट नहीं है। अतः वे हम लोगों को भी समाज से निकाल कर उनके साथ भेजना चाहते हैं। स्वामीजी ने श्वेताम्बरों को दिगम्बर बनाया और ये लोग मूल दिगम्बरों को भी श्वेताम्बर बनाने पर तुले हुए हैं। समाज से निरन्तर कह रहे हैं कि सोनगढ़ वालों के साथ जयपुर वालों को भी मन्दिरों में न घुसने दिया जाए। क्या वे जानते हैं कि जिस सूर्यकीर्ति-प्रकरण से आपको विरोध है, उस प्रकरण को हजारों नये दिगम्बरों का भी समर्थन प्राप्त नहीं है। पूज्य श्रीकानजीस्वामी की प्रेरणा से निर्मित अनेक जिनमन्दिरों में एड़ी-चोटी का पसीना लगाने के बाद भी वह मूर्ति स्थापित नहीं हो सकी है, जो सूर्यकीर्ति-प्रकरण उत्तेजना का मूल कारण है, उस सूर्यकीर्ति-प्रतिष्ठा से जो लोग सहमत नहीं हैं, उसके विरुद्ध अपने तरीके से संघर्ष भी कर रहे हैं, उनके विरुद्ध कुछ भी कहने या करने का क्या औचित्य है, यह हमारी समझ से परे है।

बिना सोचे-समझे कुछ भी लिखते-बोलते रहने से दिगम्बर समाज की कितनी हानि होगी? क्या इसकी कल्पना भी उन्हें नहीं है?

इस नाजुक स्थिति का लाभ उठाकर कुछ लोग पावन जिनवाणी को मन्दिरों से हटाने एवं जलप्रवाह करने की बातें करने लगे हैं, इसके लिए समाज को उकसाने भी लगे हैं। पहले भी इसप्रकार के प्रयास किए गए थे, पर वे सफल नहीं हुए, आगे भी इसप्रकार के कार्यों का यही हाल होनेवाला है। क्या समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक को मात्र इसी आधार पर बहिष्कृत किया जा सकता है कि वे सोनगढ़ या जयपुर से प्रकाशित हुए हैं? क्या इसमें आचार्य कुन्दकुन्द और पंडित टोडरमलजी

का अपमान नहीं होगा? कल तक जो जिनवाणी थी, मन्दिरों में पढ़ी ही नहीं, पूजी जाती थी, क्या वह कुछ अविवेकियों के अविवेकपूर्ण कार्यों से आज तिरस्कार योग्य हो गई? शास्त्रों का तिरस्कार कर नरक-निगोद जाने का महापाप किसी के बहकाने से धर्मभीरू समाज कभी करने वाली नहीं है। धर्म के दशलक्षण एवं जिनवरस्य नयचक्रम् जैसी सर्वमान्य कृतियाँ, जिनकी प्रशंसा मुनिराजों ने भी की है, विरोधी विद्वानों ने भी दिल खोलकर की है, जो आज जन-जन की वस्तु बन गई हैं, उन्हें निकाल पाना क्या आज किसी के वश की बात है? मान लो, लोग इसमें सफल भी हो गए तो इससे उन्हें क्या दण्ड मिलनेवाला है, जिन्होंने यह अनर्थ किया है? हम आपस में ही लड़ मरेंगे, जिसका भरपूर लाभ उन्हें ही प्राप्त होगा। वे तो यही चाहते हैं कि हम आपस में लड़ मरें और वे दूर बैठे-बैठे तमाशा देखते रहें।

कुछ असामाजिक तत्त्व मन्दिरों में सोनगढ़ साहित्य न रखने के बोर्ड अधिकारियों की अनुमति एवं जानकारी बिना लगा रहे हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि श्री टोडरमल स्मारक भवन के मन्दिर पर भी कोई ऐसा कागजी बोर्ड लगा गए हैं। क्या होनेवाला है इस सबसे? जहाँ लाखों रुपयों का वही साहित्य रखा हो, जहाँ से सारे देश में वह साहित्य जा रहा हो, वहाँ लगा यह कागजी बोर्ड स्वयं ही हास्यास्पद नहीं लगता है क्या? कई स्थानों पर पता करने पर पता चला है कि वहाँ भी वैसे ही बिना अनुमति एवं जानकारी के कागजी बोर्ड लगा दिए हैं। इससे पता चलता है कि लगभग सभी जगह यही स्थिति है - ऐसे कागजी घोड़े दौड़ाने से क्या होनेवाला है, सिवाय वातावरण विक्षुब्ध होने के?

हमारी स्थिति आज बड़ी ही विचित्र हो रही है। सोनगढ़ वाले कहते हैं कि जो भी विरोध हो रहा है, वह सब हम ही करा रहे हैं, शेष समाज को कुछ पड़ी ही नहीं है। विरोध करनेवाले भी निरन्तर आरोप लगा रहे

हैं कि हम सोनगढ़ वालों से मिले हुए हैं, इसीकारण डटकर विरोध नहीं कर रहे हैं। हम सच्चे हृदय से दोनों को बता देना चाहते हैं कि हम दूसरों के कंधों से गोली चलाना नहीं जानते, न कभी चलाने का प्रयास ही करते हैं। हमें जो कुछ भी कहना होता है, या करना होता है; सब एकदम स्पष्ट कहते हैं, खुलकर करते हैं। इस सन्दर्भ में भी हमने जो किया है, वह खुलकर किया है, इससे अधिक न हम कुछ कर सकते हैं, न करना चाहते हैं।

सूर्यकीर्ति की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के नाम पर आगम के आधार बिना जो भी हुआ है, हम उसे रंचमात्र भी उचित नहीं मानते, पर पूज्य स्वामीजी का इसमें कोई योग नहीं है, क्योंकि भोगीभाई द्वारा इसप्रकार की चर्चा आने पर उन्होंने बड़ी ही दृढ़ता से इसका निषेध कर दिया था। इस बात को श्री नेमीचंदजी पाटनी जैनपथ प्रदर्शक में पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। यह बात भी समझ लीजिए कि हम उनके सच्चे अनुयायी हैं। हमने उनसे वीतरागी तत्त्व पाया है, क्रमबद्धपर्याय का पाठ पढ़ा है, उनकी उपेक्षा हमसे संभव नहीं है, उनका अपमान हमें बर्दाश्त नहीं है और न कभी होगा।

स्वामीजी के देहावसान के बाद सोनगढ़ में हुए गलत कार्यों में हमारी रंचमात्र भी अनुमोदना नहीं है और न हम उनके प्रति रंचमात्र भी जिम्मेदार हैं।

वर्तमान क्षुब्ध वातावरण देखकर मुमुक्षु भाइयों में भी घबड़ाहट है, वे भी इस असमंजस में हैं कि इस स्थिति में हम क्या करें, क्या न करें? हमसे वात्सल्य और अपेक्षा रखनेवाले आत्मार्थी मुमुक्षुभाई भी हमारी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं कि वर्तमान स्थिति में हम क्या करते हैं, कौन-सा रास्ता चुनते हैं?

ऐसी स्थिति में बहुत कुछ चाहने पर भी चुप रहना संभव नहीं हो पा रहा है। सागर शिविर के बाद लगभग डेढ़ माह के लिए धर्मप्रचारार्थ

विदेश भी जाना है। अतः इस समय सम्पूर्ण स्थिति को स्पष्ट करना अति आवश्यक हो गया है।

उक्त सम्पूर्ण विश्लेषण के उपरान्त मूल प्रश्न तो खड़ा ही है कि यदि विघटनवादियों के मंसूबे सफल हो गये और समाज में स्थान-स्थान पर संघर्ष उत्पन्न हो गया तो हम क्या करेंगे और हमें क्या करना चाहिए ?

भाई, मेरा विश्वास है कि ऐसा नहीं होगा, दो-एक छुटपुट घटनाओं को छोड़कर विशाल स्तर पर शान्तिप्रिय अहिंसक समाज ऐसा कभी नहीं होने देगी। दिगम्बर जैन समाज में एकता और शान्ति कायम रहे, यह दिगम्बर जैन महासमिति का दायित्व है और वह अपने दायित्व के प्रति पूर्ण सजग भी है। इसलिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

भाई, एक बात यह भी तो है कि उत्तेजना की सामग्री प्रदान करनेवाले सोनगढ़ वाले भी हमारे साधर्मी भाई हैं और इसका लाभ उठाकर उत्तेजना फैलानेवाले बन्धु भी हमारे साधर्मी भाई हैं। हम दोनों से ही सच्चे हृदय से अनुरोध करते हैं कि वे इस नाजुक स्थिति को पहिचानें और कोई ऐसा कार्य न करें कि जिससे समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण दिगम्बर समाज की ही हानि है।

हमारे पवित्र हृदय से किए गये इस अनुरोध को सम्पूर्ण समाज पवित्र हृदय से ही ग्रहण करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है; फिर भी यदि कुछ हुआ तो हमारे पास एक ही रास्ता शेष रह जाता है कि हम महात्मा गांधी के बताये रास्ते पर चलकर आत्मशुद्धि के लिए सामूहिक उपवास करें, गाँव-गाँव में शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ करें ।

मुझे विश्वास है कि सच्चे हृदय से की गई हमारी प्रार्थनाएँ एवं आत्मशुद्धि के लिए किए गये हमारे सामूहिक उपवास व्यर्थ न जायेंगे। आत्मशुद्धि की कमी के कारण सच्चे हृदय से भी दी गई आवाज में वह शक्ति नहीं होती कि जिसे सभी लोग सुन सकें, स्वीकार कर सकें। जब

हम उपवास द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त कर निष्कषायभाव से शान्ति के लिए अपनी आवाज बुलन्द करेंगे तो वह आवाज अवश्य सुनी जाएगी, हमारी प्रार्थनाएँ और उपवास व्यर्थ न जायेंगे।

सम्पूर्ण देश और विदेशों में रहनेवाले सभी आत्मार्थी मुमुक्षु भाइयों को इस कार्य के लिए तैयार रहना चाहिये। हम अपने इस आन्दोलन की विस्तृत रूपरेखा व कार्यक्रम यथासमय सब तक पहुँचायेंगे। यदि कुछ लोगों पर हमारे इस पवित्र आह्वान का असर न भी पड़े, तब भी दुष्काल में हमारी प्रार्थनाएँ और उपवास हमारे चित्त को तो शान्त रखेंगे ही, जिससे प्रतिक्रिया में होनेवाली प्रतिहिंसा से तो हम बचे ही रहेंगे।

दो-चार शास्त्रों के जलाने या पानी में बहाने से हम समाप्त नहीं हो जावेंगे, हम उसके बदले में उनकी पुस्तकों को जलाने के स्थान पर हजारों प्रतियाँ और अधिक छपाने के प्रयास में लगेंगे। यदि जिनवाणी के जलप्रवाह से हम अपने बन्धुओं को विरत करना चाहते हैं तो मात्र इस भावना से ही कि इस पाप के फल से बचे रहें, क्योंकि जिनवाणी तो हम और भी छपा लेंगे, पर हमारे ही साधर्मी भाइयों को जो फल भोगना होगा, उसकी बात सोचकर हमारा हृदय काँप जाता है।

अधिक क्या लिखूँ? शीघ्रातिशीघ्र इन विकल्पों से विरत हो, आत्माराधना एवं जिनवाणी की सेवा में निर्विघ्न संलग्न हो जाऊँ - इस पावन भावना से विराम लेता हूँ।

**“समझ में समझने से आता है,
समझाने से नहीं;
अतः स्वयं समझने के लिए
प्रयत्नशील व चिंतनशील बनना चाहिए।”**

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अधूरी उल्टी आत्मकथा

सोलहवाँ अध्याय

जरा मुड़कर देखें

गुरुदेव तो गए, न तो उन्हें वापिस ही लाया जा सकता है और न नये गुरुदेव ही बनाये जा सकते हैं। गुरुदेव बनते हैं, बनाये नहीं जाते। जो बनाने से बनते हैं या बनाये जाते हैं; वे गुरु नहीं, महंत होते हैं, मठाधीश होते हैं। उनसे गुरुगम नहीं मिलता, गुरुडम चलता है। जिन गुरुदेवश्री ने जीवनभर गुरुडम का विरोध किया, उनके नाम पर गुरुडम चलाना न तो उपयुक्त ही है और न उन्हें भी इष्ट था, होता तो अपने उत्तराधिकारी की घोषणा वे स्वयं कर जाते। उनके जीवनकाल में भी जब उनसे इसप्रकार की चर्चाएँ की गईं तो उन्होंने उदासीनता ही दिखाई।

हम उन गुरु के शिष्य हैं, जिन्होंने कभी पर की ओर नहीं देखा, मुड़कर पीछे नहीं देखा, जिन्होंने मात्र स्वयं को देखा और स्वयं के बल पर ही चल पड़े। वे जहाँ खड़े हो गए, वह स्थान तीर्थ बन गया; वे जिधर चल पड़े, उधर लाखों लोग चल पड़े। वे भगीरथ थे, जो अपने भागीरथ पुरुषार्थ द्वारा अध्यात्म-भागीरथी को हम तक लाये और जिन्होंने सारे जगत को उसमें डुबकी लगाने के लिए पुकारा। हम भी कुछ कम नहीं, उस भागीरथी की निर्मल जलधारा को हम जन-जन तक पहुँचायेंगे।

जरा मुड़कर देखें

हम सबके अनन्य उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को दिवंगत हुए पाँच वर्ष से भी अधिक दिन हो गये थे। उनके देहावसान पर हमने कुछ भावनाएँ व्यक्त की थीं। हम उन पर कहाँ तक चल सके हैं – इसके निरीक्षण के लिए हम जरा मुड़कर भी देखें और आत्म-निरीक्षण करें कि हम कहीं भटक तो नहीं गये हैं। हम अपने संकल्पित सन्मार्ग पर हैं या नहीं, इस बात को जानने के लिए हमने अपने कुछ उन विचारों को प्रस्तुत किया, जो हमने उनके महाप्रयाण के अवसर पर अभिव्यक्त किए थे।

फरवरी, 1981 ई. के आत्मधर्म (हिन्दी) के सम्पादकीय 'अब क्या होगा?' में लिखा था – गुरुदेवश्री के स्थान की पूर्ति की कल्पना भी काल्पनिक ही है, क्योंकि उनके स्थान की पूर्ति भी मात्र वे ही कर सकते थे। गुरुदेव तो गए, न तो उन्हें वापिस ही लाया जा सकता है और न नये गुरुदेव ही बनाये जा सकते हैं। गुरुदेव बनते हैं, बनाये नहीं जाते। जो बनाने से बनते हैं या बनाये जाते हैं; वे गुरु नहीं, महंत होते हैं, मठाधीश होते हैं। उनसे गुरुगम नहीं मिलता, गुरुडम चलता है।

जिन गुरुदेवश्री ने जीवनभर गुरुडम का विरोध किया, उनके नाम पर गुरुडम चलाना न तो उपयुक्त ही है और न उन्हें भी इष्ट था, होता तो अपने उत्तराधिकारी की घोषणा वे स्वयं कर जाते। उनके जीवनकाल में भी जब उनसे इसप्रकार की चर्चायें की गईं तो उन्होंने उदासीनता ही दिखाई।

अतः उनके रिक्त स्थान की पूर्ति की चर्चा का कोई अर्थ नहीं है। रहा प्रश्न उनके द्वारा या उनकी प्रेरणा से संचालित तत्त्वप्रचार की गतिविधियों के भविष्य का। सो भाई, पिता के देहावसान होने पर उनके लगाये कारखाने बन्द नहीं होते, अपितु एक से अनेक होकर और अधिक द्रुतगति से चलते हैं। जब दो-चार पुत्रों के होने मात्र से ये कल-कारखाने द्विगुणित-चतुर्गुणित होकर चलते हैं, तो जिस धर्मपिता ने चार लाख से भी अधिक धर्मसंतानें छोड़ी हों, उसके चलाये कार्यक्रम कैसे बन्द हो सकते हैं? वे तो शतगुणित-सहस्र-गुणित होकर चलने चाहिये और चलेंगे भी। इसमें आशंकाओं के लिए कोई अवकाश नहीं है।

हम उन गुरु के शिष्य हैं, जिन्होंने कभी पर की ओर नहीं देखा, मुड़कर पीछे नहीं देखा, जिन्होंने मात्र स्वयं को देखा और स्वयं के बल पर ही चल पड़े। वे जहाँ खड़े हो गए, वह स्थान तीर्थ बन गया; वे जिधर चल पड़े, उधर लाखों लोग चल पड़े। वे भागीरथ थे, जो अपने भागीरथ पुरुषार्थ द्वारा अध्यात्म-भागीरथी को हम तक लाये और जिन्होंने सारे जगत को उसमें डुबकी लगाने के लिए पुकारा। हम भी कुछ कम नहीं, उस भागीरथी की निर्मल जलधारा को हम जन-जन तक पहुँचायेंगे। वे अकेले थे, हम चार लाख से भी अधिक हैं; पर वह तूफानी वेग हममें कहाँ? न सही तूफानी वेग से, पर चलेंगे हम भी।

अब क्या होगा? पूछने वालों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वही होगा जो गुरुदेवश्री ने बताया है, चलाया है, जो अभी चलता है, अभी तक चलता रहा है, वह अब भी चलता रहेगा। उसीप्रकार चलता रहेगा, उसमें कोई कमी नहीं आयेगी, हो सकता है कि उसकी चाल में और भी तेजी आ जाए। पर भाई! गुरुदेव तो गये सो गये, उन्हें तो कहाँ से लायें?

पर एक बात यह भी तो है कि हम जिस युग में पैदा हुए हैं, वह युग लाख बुरा हो, पर इसमें वे सुविधाएँ हैं, जो महावीर के, कुन्दकुन्द के,

अमृतचंद्र के जमाने में नहीं थीं। आज गुरुदेव के हजारों घण्टों के टेप हमारे पास हैं, जिन्हें हम कभी भी उन्हीं की आवाज में सुन सकते हैं, घण्टों के उनके वीडिओ टेप (बोलती फिल्म) हैं, जिनके माध्यम से हम गुरुदेवश्री को चलते-फिरते देख सकते हैं, बोलते हुए देख सकते हैं, सुन सकते हैं, बस वे सदेह-सचेतन हमारे पास नहीं हैं, पर महावीर की, कुन्दकुन्द की, अमृतचंद्र की तो आवाज भी हमारे पास नहीं, चित्र भी हमारे पास नहीं; चलती-फिरती, बोलती फिल्म की बात तो बहुत दूर की कल्पना है।

इस अर्थ में हम बड़े भाग्यशाली हैं। अब तक तो हमें उनका साक्षात् लाभ मिलता था, पर अब हमें एकलव्य बनना होगा। उनके अचेतन चित्रों से, साहित्य से, टेप से, चेतन शिष्यों से देशना प्राप्त करनी होगी।

अब क्या होगा ? होगा क्या ? दुनिया तो अपनी गति से चलती ही रहती है, वह तो कभी रुकती नहीं। बड़े-बड़े लोग आये और चले गये, पर यह दुनिया तो निरन्तर चल ही रही है, इसकी गति में कहाँ रुकावट है? जगत की बात ही क्यों सोचते हो? यह सोचो न कि हम सबको भी तो एक दिन इसी प्रकार चले जाना है।

अब क्या होगा ? इस किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति को तोड़ो न! छोड़ो न इस व्यर्थ के विकल्प को और चल पड़ो उस रास्ते पर, जो गुरुदेवश्री ने बताया है और जगत को बताओ वह रास्ता जो गुरुदेवश्री ने आपको व हम सबको बताया है।

भगवान महावीर के चले जाने पर गौतम गणधर रोने नहीं बैठे थे, अपितु महावीर की बताई राह पर चलकर स्वयं महावीर (सर्वज्ञ) बन गये थे। यदि हम गुरुदेवश्री के सच्चे शिष्य हैं तो हमें भी गुरुदेवश्री के चले जाने पर वही राह अपनानी चाहिए, जो महावीर के अनन्यतम शिष्य गौतम ने अपनाई थी।

गुरुदेवश्री के अभाव में उदासी तो सहज है, पर निराशा का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। उठो! मन को यों निराश न करो और चल पड़ो

उस राह पर। बातों से नहीं, आओ! हम सब मिलकर अपने कार्यों से दुनिया को इस प्रश्न का उत्तर दें, दुनिया की इस शंका का समाधान प्रस्तुत करें कि अब क्या होगा? – यह है हमारा वह संकल्प, जिसे हमने गुरुदेवश्री के महाप्रयाण पर व्यक्त किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी क्या थे? इसके संबंध में आज कोई कुछ भी क्यों न कहे; पर जब उनका महाप्रयाण हुआ था, तब उनका जीवनभर विरोध करनेवाले जैनगजट ने भी अपने संपादकीय में लिखा था – उन्होंने अपने जीवन में करीब 65 पंचकल्याणक प्रतिष्ठा व 35 वेदी-प्रतिष्ठायें करवाईं और श्वेताम्बर बन्धुओं को दिगम्बरी बनाया। समयसार व मोक्षमार्गप्रकाशक जैसे ग्रन्थों के पठन-पाठन की लहर समाज में दौड़ाई तथा स्वाध्याय के प्रचार का बिगुल बजा दिया। विरोध होता रहा, लेकिन विरोध को सहते हुए दिगम्बर धर्म के प्रचार या प्रसार में किसी भी प्रकार की कसर उठा नहीं रखी। आबाल-वृद्धों में दिगम्बर धर्म का प्रचार किया और रात्रिभोजन, जमींकन्द आदि का त्याग उनके प्रभाव से स्वतः उनके अनुयायी करते गए। देश में सोनगढ़ एकप्रकार का प्रसिद्ध स्थान बन गया, जहाँ से उन्होंने जिनवाणी की तन-मन से जीवनपर्यन्त साधना करने के साथ ही देश में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रचार किया। शिक्षण शिविर के द्वारा एक नई दिशा देकर धर्मप्रचार की एक अद्भुत योजना समाज को दी।

प्रायः यह देखा गया है कि सम्प्रदाय बदलनेवाले अन्त में पथभ्रष्ट भी होते रहे हैं, लेकिन स्वामीजी सदा लौहपुरुष बनकर रहे। स्वामीजी के उठ जाने से वास्तव में एक महान् प्रतिभासम्पन्न व पुण्यात्मा आध्यात्मिक वक्ता का सदा के लिए अभाव हो गया।

गजट परिवार भी उनके देहावसान पर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ वीरप्रभु से प्रार्थना करता है कि स्वामीजी को पूर्ण रत्नत्रय की प्राप्ति होकर शीघ्र मुक्तिलाभ हो।

स्वामीजी के महाप्रयाण के बाद सोनगढ़, जयपुर और सम्पूर्ण देश में जो कुछ भी हुआ है, उसके संबंध में अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि सम्पूर्ण समाज सम्पूर्ण घटनाचक्र एवं स्थितियों से भलीभाँति परिचित है। पूज्य गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के अवसर पर हमने जो संकल्प किए थे, उनकी पूर्ति करने में जिनका वरदहस्त एवं परिपूर्ण सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त रहा है, जिनके साथ सदा कंधे से कंधा मिलाकर हमने कार्य किया है, वे पण्डित खीमचन्दभाई जेठालाल शेठ एवं बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता शारीरिक दृष्टि से क्रमशः शिथिल होते गये; पर जबतक वे रहे, उनका सम्बल हमें अन्त तक प्राप्त रहा; आज वे भी हमारे बीच नहीं हैं।

गुरुदेवश्री के अभाव में गये इन पाँच वर्षों में अगणित विनाशकारी तूफान आये, गुरुदेव द्वारा आरंभिक आध्यात्मिक क्रान्ति पर भीतर और बाहर से अगणित आक्रमण हुए और निरन्तर हो रहे थे, फिर भी वह उद्दाम वेग से निरन्तर गतिशील थे, अगणित अवरोधों के बाद भी उसकी गति अवरुद्ध नहीं हुई थी, इसे हम अपना सौभाग्य ही नहीं समझते, अपितु संकल्प की कसौटी भी मानते हैं।

कुछ भी हो, इन स्थितियों ने जहाँ एक ओर हमें एक अद्भुत दृढ़ता और दबावों को बरदाश्त करने की असीम क्षमता प्रदान की थी तथा सुविचारित रीति-नीति पर हर कीमत पर चलते रहने का साहस जगाया था, वहाँ दूसरी ओर जगत के इस स्वरूप से बहुत कुछ विरक्त भी किया था, सामाजिक प्रपंचों से सर्वथा दूर रहने का भाव भी जगाया था; कौन कितने गहरे पानी में था, यह भी जानने को मिला था।

हमारी सुव्यवस्थित रीति-नीति यह है कि पूज्य गुरुदेवश्री और उनके द्वारा बताये गये जिनागम के रहस्य एवं तत्त्वज्ञान को हम किसी भी कीमत पर छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं। इसीप्रकार गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के बाद सोनगढ़ में समागत विकृतियों का समर्थन भी हम किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते हैं। न हमने आज तक उनका

समर्थन किया है और न कभी करेंगे ही। पाँच वर्ष पूर्व किये गये संकल्प को हमने पूरी निष्ठा से आज तक निभाया है और आज उनके 97वें जन्मदिवस पर अपने संकल्प को फिर दुहराते हैं। ध्यान रहे, हमारा यह बहुमूल्य मनुष्यभव न तो किसी पोपडम के पोषण के लिए ही समर्पित हो सकता है और न इसे किसी की असीम महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बलिदान ही किया जा सकता है। हमारा यह बहुमूल्य जीवन तो आत्महित और जिनवाणी की सेवा में ही सम्पूर्णतः समर्पित है।

मई का माह हमारे लिये अति महत्त्व का माह है, क्योंकि इसमें 10 मई, 1986 को पूज्य गुरुदेवश्री का 97वाँ जन्मदिन है और 22 मई, 1986 को प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता के स्वर्गवास को 1 वर्ष पूरा होने जा रहा है। 10 मई, 1986 को पूज्य गुरुदेवश्री की जन्म-जयन्ती तो सम्पूर्ण देश में स्थान-स्थान पर बड़े ही उत्साह से मनाई ही जा रही है, पण्डित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता का प्रथम स्मृति-दिवस भी गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित प्रशिक्षण शिविर के प्रारंभ होने के एक दिन पूर्व 22-5-86 को बड़े ही उत्साह से मनाया जा रहा है।

इस अवसर पर हम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनुयायियों, भक्तों, अन्धभक्तों, विरोधियों, अन्धविरोधियों सभी से विनम्र अनुरोध करना चाहते हैं कि कोई भी अब उनके दिवंगत होने के पाँच वर्ष बाद भी राग-द्वेषवश इसप्रकार के कार्य न करें, व्यवहार न करें कि जिससे न केवल उनकी प्रतिष्ठा धूमिल होती हो, अपितु जिन-अध्यात्म एवं जैनसमाज की भी अपूरणीय क्षति हो रही हो।

पूज्य गुरुदेवश्री के समान ही सभी आत्मार्थीजन व्यर्थ के वाद-विवाद से स्वयं को सम्पूर्णतः पृथक् कर आत्महित में ही सम्पूर्णतः संलग्न हो जाएँ। ●

अधूरी उल्टी आत्मकथा

सत्रहवाँ अध्याय

एक विहंगावलोकन

क्या वातावरण था उस समय का ? सारा सागर ही अध्यात्ममय हो गया था। नवम्बर की भयंकर सर्दी में भी रात को ग्यारह बजे तक कटरा बाजार के खुले मैदान में लोग जमे रहते थे, कोई हिलने का भी नाम नहीं लेता था। सायं साढ़े सात बजे से प्रवचन आरंभ होते, एक-एक घंटे के तीन प्रवचन होते, जिसमें मेरा नम्बर सबसे अन्त में आता, पर जनता उठने का नाम भी न लेती, बड़े ही मनोयोग से सुनती। सागर की धार्मिक जनता की आध्यात्मिक रुचि के दर्शन मुझे उससमय ही हुए; और मेरे हृदय में सागर के लिए एक सम्माननीय स्थान बन गया।

णमोकार मंत्र कोई भी सिखाये इससे क्या अन्तर पड़ता है? भाई, हम सबको मिलकर अज्ञान के विरुद्ध लड़ना है, असंयम के विरुद्ध लड़ना है, दुराचार के विरुद्ध लड़ना है। जो भी धार्मिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले लोग हैं, उन्हें परस्पर में लड़ने के स्थान पर मिलकर अज्ञान से, अशिक्षा से लड़ना चाहिये। इसमें ही समाज का भला है, संस्थाओं का भला है, धर्म का भला है और व्यक्तियों का भी भला इसी में है।

एक विहंगावलोकन

वीतराग विज्ञान, मई 1985

सागर मध्यप्रदेश के उन सौभाग्यशाली सदाचारी नगरों में है, जिसे वर्णीजी का आशीर्वाद और सत्समागम सर्वाधिक प्राप्त रहा है। इस युग में आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने में जो स्थान आध्यात्मिक-सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी को प्राप्त है, वही स्थान सम्पूर्ण जैन समाज में जैनदर्शन व धर्म के अध्ययन-अध्यापन में गुरु गोपालदासजी बरैया एवं वर्णीजी को प्राप्त रहा है।

आज जैनदर्शन के जो भी बुजुर्ग विद्वान दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में उनके ही शिष्य-प्रशिष्यों में हैं, उनके द्वारा ही तैयार हुए हैं।

उन्होंने उस युग में कार्य प्रारम्भ किया था, जब समाज में मात्र तत्त्वार्थसूत्र का पाठ कर देनेवाला साधारण व्यक्ति ही बड़ा विद्वान माना जाता था। उन्होंने मात्र प्राकृत और संस्कृत भाषा के विशेषज्ञ एवं जैनदर्शन के पाठी विद्वान ही तैयार नहीं किए, अपितु गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोलकर सामान्यजनों को भी जागृत किया।

भारत का मध्यक्षेत्र बुन्देलखण्ड भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं पुरातत्व की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध क्षेत्र है। जैन संस्कृति के प्राचीनतम केन्द्र इस प्रदेश में देवगढ़ जैसे अनेकानेक कलातीर्थ हैं; जो जैन-संस्कृति की प्राचीनता एवं भूतकालीन प्रभूतपूर्व संवृद्धि को आज भी

उजागर कर रहे हैं। सिद्ध क्षेत्र और अतिशय क्षेत्रों की भी यहाँ कमी नहीं है। प्रत्येक दश–बीस किलोमीटर पर किसी–न–किसी तीर्थ के दर्शन आपको होंगे ही। तीर्थंकरों के स्मारक ये तीर्थ इस भूमि की पवित्रता के जीवन्त प्रमाण हैं।

यहाँ की धर्म–भीरु जनता में आज भी वे संस्कार विद्यमान हैं, जो देश के अन्य भागों में बसनेवाले लोगों में दुर्लभ होते जा रहे हैं।

समाज के मार्गदर्शक विद्वान होते हैं। जैनसमाज में आज जो भी विद्वान देखने में आ रहे हैं, उनमें से अधिकांश इस पावन भूमि की ही देन हैं। वीतरागी सन्तों का विहार भी जितना इस प्रदेश में होता रहता है, उतना अन्यत्र नहीं। सहज धार्मिक वातावरण ही इन सबका एकमात्र कारण है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की आध्यात्मिक क्रान्ति का लाभ भी जितना इस प्रदेश ने उठाया है, उतना अन्य प्रदेशों ने नहीं। शुद्धाम्नाय का असली गढ़ भी बुन्देलखण्ड ही है। तारणस्वामी की आध्यात्मिक क्रान्ति का मूलस्थान भी यही भूभाग रहा है। इस पावन भूभाग में जन्म लेने के कारण मैं अपने को सौभाग्यशाली अनुभव करता हूँ।

जनसंस्कृति, सभ्यता, सदाचार एवं जिनवाणी की आराधना के गढ़ इस भूभाग के केन्द्र में स्थित सागर नगर भी वर्णीजी का स्पर्श पाकर धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है।

वैसे तो मैंने लगभग 25 वर्ष पूर्व सागर में एक पर्यूषण पर्व भी किया था, पर सर्वाधिक स्मरणीय है 15 वर्ष पूर्व नवम्बर, 1971 ई. में लगा वह शिक्षण–शिविर, जिसमें आदरणीय विद्वद्वर्य सर्वश्री खीमचंदभाई जेठालाल शेठ, राजकोट; बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर; बाबू जुगलकिशोरजी युगल, कोटा; सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्दजी,

वाराणसी एवं पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी आदि विद्वान भी पधारे थे। स्थानीय विद्वान तो वहाँ थे ही। सागर भी विद्वानों की नगरी है – यह तो सब जानते ही हैं।

क्या वातावरण था उस समय का? सारा सागर ही अध्यात्ममय हो गया था। नवम्बर की भयंकर सर्दी में भी रात को ग्यारह बजे तक कटरा बाजार के खुले मैदान में लोग जमे रहते थे, कोई हिलने का भी नाम नहीं लेता था। सायं साढ़े सात बजे से प्रवचन आरंभ होते, एक-एक घंटे के तीन प्रवचन होते, जिसमें मेरा नम्बर सबसे अन्त में आता, पर जनता उठने का नाम ही न लेती, बड़े ही मनोयोग से सुनती। सागर की धार्मिक जनता की आध्यात्मिक रुचि के दर्शन मुझे उससमय ही हुए; और मेरे हृदय में सागर के लिए एक सम्माननीय स्थान बन गया।

वह शिविर तारण-जयन्ती के अवसर पर तारण-जयन्ती के उपलक्ष्य में ही लगा था। इस वर्ष फिर तारण-जयन्ती के अवसर पर ही मुझे सागर जाने का अवसर मिला। मुझे यह कहते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि इस वर्ष भी मुझे सागर में वही जागृति दिखाई दी, वही स्नेह मिला।

इस वर्ष तारणस्वामी के ग्रन्थराज ज्ञानसमुच्चयसार एवं समयसार गाथा 16 पर प्रवचन करने का अवसर मिला। ज्ञानसमुच्चयसार पर हुए प्रवचनों को प्रकाशित करने का भाव श्रीमान् सेठ भगवानदासजी को हुआ है, जो गागर में सागर नाम से प्रकाशित हो रहे हैं।

श्री सेठ भगवानदासजी एवं उनके अनुज स्व. श्री शोभालालजी पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के सत्समागम में निरन्तर रहे हैं। वे उनके सत्समागम का लाभ लेने प्रतिवर्ष सोनगढ़ जाया करते थे और वहाँ तीन-चार माह रहते थे। उन्होंने वहाँ विशाल बंगला व अतिथि-निवास भी बनाया है।

यद्यपि वे इससमय अस्वस्थ चल रहे हैं, 85 वर्षीय वृद्धावस्था है; तथापि शिविर में सोत्साह भाग लेते थे। उनकी भावना हुई कि इस वर्ष सागर में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर लगना चाहिए। परिणामस्वरूप तारण-जयन्ती के अवसर पर ही सागर समाज के सहयोग से ग्रीष्मकालीन आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर लगाने के निश्चय की घोषणा की गई। परिणामस्वरूप यह शिविर सागर में लग रहा है।

इस समय हमारे साथ पं. पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर भी थे। इस शिविर के लगने में उनका सर्वाधिक श्रम रहा है। वैसे तो उनसे मेरा परिचय विगत 25 वर्ष से है, तथापि उनकी कार्यकुशलता एवं क्षमता का परिचय मुझे इस अवसर पर ही प्राप्त हुआ। आदरणीय नेमीचन्दजी पाटनी के साथ काम करने का अवसर तो मुझे विगत 18 वर्ष से प्राप्त है, मैं उनकी कार्यक्षमता का कायल रहा हूँ, पर मुझे प्रतीत होता है कि छाबड़ाजी उनके अच्छे सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की अनेक उपलब्धियों में से एक अभूतपूर्व अद्भुत उपलब्धि है, जिसके माध्यम से जैनधर्म-शिक्षा जगत में एक नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है, अनेक नये कीर्तिमान स्थापित हुए हैं।

सागर में लगनेवाला यह शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर उन्नीसवाँ है, इसके पूर्व अठारह प्रशिक्षण शिविर भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न नगरों में लग चुके हैं, जिनमें 3135 अध्यापक धार्मिक-अध्ययन कराने में प्रशिक्षित हो चुके हैं। जयपुर में दो; कोटा, उदयपुर, अजमेर एवं भीलवाड़ा में एक-एक; इसप्रकार राजस्थान में छह; विदिशा में दो, इन्दौर, छिन्दवाड़ा, भिण्ड में एक-एक; इसप्रकार

मध्यप्रदेश में पाँच; आगरा, ललितपुर एवं फिरोजाबाद में एक-एक; इसप्रकार उत्तरप्रदेश में तीन; शोलापुर, मलकापुर एवं वाशिम में एक-एक; इसप्रकार महाराष्ट्र में तीन एवं प्रान्तिज (गुजरात) में एक; इसप्रकार कुल 18 शिविर अब तक लग चुके हैं।

इनमें से जयपुर, कोटा एवं उदयपुर शिविरों को गुरुदेव श्री कानजी स्वामी का सान्निध्य भी प्राप्त रहा है। साथ में विद्वद्वर्य श्री खीमचन्दभाई एवं श्री बाबूभाई जबतक स्वस्थ रहे, तबतक उनका समागम प्रत्येक शिविर को अनिवार्य रूप से मिलता रहा है। आदरणीय विद्वद्वर्य श्री लालचन्दभाई, राजकोट एवं श्री जुगलकिशोरजी युगल कोटा का समागम तो अब भी प्रत्येक शिविर को लगभग प्राप्त ही रहता है। इनके अतिरिक्त मेरे अग्रज पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री एवं पण्डित ज्ञानचन्दजी भी इसके स्थायी सदस्य हैं। श्री नेमीचन्दजी पाटनी इसके सूत्रधार हैं, उनके बिना इसकी कल्पना भी संभव नहीं रहती।

इनके अतिरिक्त लगभग और भी 25 व्यक्ति बीस दिन तक लगातार शिक्षणकार्य में सहयोग देते हैं, जब कहीं यह शिविर अपनी अपूर्व उपलब्धियों के साथ सम्पन्न होता है। स्थानीय लोगों के श्रम की तो गणना ही संभव नहीं है, क्योंकि उन्हें तो महीनों पहिले ही इसमें जुटना पड़ता है। इसके वास्तविक स्वरूप का सम्यग्ज्ञान तो इसके प्रत्यक्षदर्शन करने से ही संभव है।

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं उसके सहयोग से जयपुर से संचालित तत्त्वप्रचार संबंधी सभी गतिविधियों को बल प्रदान करनेवाले इन श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों के जन्म की भी एक कहानी है।

यह तो आपको विदित ही है कि कोमलमति बालकों में धार्मिक संस्कार डालने, उन्हें जैनतत्त्व संबंधी सामान्य ज्ञान देने एवं सदाचार

युक्त नैतिक जीवन बिताने की प्रेरणा देने के पावन उद्देश्य से पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने अपने उदय के साथ ही सर्वप्रथम सरल, सुबोध एवं सहजबोधगम्य रोचक धार्मिक पाठ्य पुस्तकें तैयार कराईं; और उनके अध्ययन-अध्यापन के लिए स्थान-स्थान पर वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ स्थापित कीं तथा उनकी परीक्षा लेने के लिए श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की भी स्थापना की।

पाठशालाओं के सतत निरीक्षण एवं परीक्षार्थी छात्रों की उत्तर-पुस्तिकाओं को देखकर लगा कि जबतक अध्यापक बन्धुओं को धार्मिक पुस्तकों के अध्यापन की विधि में आधुनिक रीति से प्रशिक्षित नहीं किया जाएगा, तबतक वांछित उद्देश्य की प्राप्ति संभव नहीं है, क्योंकि अप्रशिक्षित और अयोग्य अध्यापक न तो छात्रों को सही ज्ञान ही दे सकते हैं और न वह आकर्षण ही पैदा कर सकते हैं, जिससे प्रेरित होकर छात्र धर्माध्ययन में रुचिवन्त हों। आज दुनिया बहुत आगे बढ़ गयी है। ऐसी स्थिति में धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में वही पुराना रवैया कैसे अपनाया जा सकता है ?

गहराई से अनुभव किया गया कि वर्णीजी द्वारा संचालित धार्मिक शिक्षा की क्रान्ति में शिथिलता का एकमात्र कारण प्रशिक्षित सुयोग्य अध्यापकों का अभाव ही है। यदि हमें धार्मिक शिक्षा के महान कार्य को गति प्रदान करनी है तो इस दिशा में गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिये।

अनेक दृष्टिकोणों से गम्भीरता से विचार-विमर्श करने के उपरान्त आगामी पीढ़ी में जैन तत्त्वज्ञान अपने मूल रूप में सुरक्षित रहे तथा धार्मिक संस्कार भी कायम रहे – इस पावन भावना से योग्य अध्यापकों को प्रशिक्षित करने का संकल्प किया गया, जो इन प्रशिक्षण शिविरों के रूप में प्रतिफलित हुआ है।

जब हमने इन्हें प्रारम्भ किया था, तब हमें भी यह कल्पना न थी कि ये शिविर इतने उपयोगी सिद्ध होंगे। सीमित उद्देश्य से प्रारम्भ किये गये इन शिविरों ने शीघ्र ही बहु–उद्देशीय रूप धारण कर लिया। इनमें आज मात्र धार्मिक अध्यापकों को प्रशिक्षित ही नहीं किया जाता, अपितु बालशिक्षा, प्रौढ़शिक्षा, महिलाशिक्षा के साथ–साथ प्रवचनों के माध्यम से जनसमुदाय–शिक्षण भी चलता है।

इसप्रकार इसमें दस वर्ष के बालक–बालिका से लेकर अस्सी वर्षीय वृद्ध आत्मार्थी भी लगातार बीस दिन तक अनवरत भाग लेते हैं। प्रतिदिन प्रात: 5 बजे से लेकर रात्रि 10.30 बजे तक 8–10 घण्टे के सघन कार्यक्रम चलते हैं। आध्यात्मिक शिक्षा का इसप्रकार का वातावरण बन जाता है कि लोग समाचारपत्र पढ़ना भी भूल जाते हैं और लोगों को दिनांक व वार भी याद नहीं रहते हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस स्थान पर यह शिविर लगता है, उसके आस–पास 25–30 नवीन वीतराग–विज्ञान पाठशालाएँ तो खुल ही जाती हैं। आज जो सम्पूर्ण देश में 353 पाठशालाएँ चल रही हैं, वे सब इन प्रशिक्षण शिविरों का ही परिणाम हैं। आज जब छात्रों के अभाव में धार्मिक शिक्षा देने वाले महाविद्यालय बन्द होते जा रहे हैं या मृतप्रायः हो रहे हैं, तब इन शिविरों की बदौलत ही श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में छात्रों के प्रवेश के लिये भीड़ उमड़ती है और वह चुन–चुनकर सीमित छात्रों को प्रवेश देता है। चालीस से पचास हजार तक का सत्साहित्य जन–जन तक पहुँच जाता है तथा इतने के ही धार्मिक प्रवचनों के कैसेट भी बिकते हैं। आध्यात्मिक पत्रिका वीतराग–विज्ञान एवं समाचारपत्र जैनपथ प्रदर्शक के भी सैकड़ों ग्राहक इस अवसर पर बनते हैं। आस–पास के स्थानों में दैनिक शास्त्र–सभायें एवं तत्त्व–गोष्ठियाँ आरम्भ हो जाती हैं – इसप्रकार सामूहिक रूप से धार्मिक वातावरण का निर्माण होता है।

इन शिविरों की लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हमारे इन शिविरों से प्रेरणा पाकर अन्य संस्थाएँ भी शिविर आयोजित करने लगी हैं। इस बात की हमें हार्दिक प्रसन्नता है, क्योंकि यह काम इतना बड़ा है कि इसमें जितने भी लोग जुट जायें, उतने ही कम हैं। सबकुछ मिलाकर सभी लोग वीतरागी वाणी का ही तो प्रचार-प्रसार करते हैं।

णमोकार मंत्र कोई भी सिखाये - इससे क्या अन्तर पड़ता है? भाई, हम सबको मिलकर अज्ञान के विरुद्ध लड़ना है, असंयम के विरुद्ध लड़ना है, दुराचार के विरुद्ध लड़ना है। जो भी धार्मिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले लोग हैं, उन्हें परस्पर में लड़ने के स्थान पर मिलकर अज्ञान से, अशिक्षा से लड़ना चाहिये। इसमें ही समाज का भला है, संस्थाओं का भला है, धर्म का भला है और व्यक्तियों का भी भला इसी में है।

आश्चर्य इस बात का है कि हमारे प्रशिक्षण शिविरों की लोकप्रियता का लाभ उठाने के लिये कुछ लोग अपने सामान्य शिविरों का नाम भी प्रशिक्षण शिविर रख लेते हैं, जबकि उनमें प्रशिक्षण (Training) नाम की कोई चीज ही नहीं होती। यद्यपि हमें उनकी प्रवृत्ति से कोई विरोध नहीं है, तथापि इससे प्रशिक्षण शब्द की सार्थकता तो समाप्त होती ही है।

इसका एक कारण भी यह है कि वे लोग हमारे शिविरों की लोकप्रियता से प्रभावित होकर उसे देखने आते हैं और दो-एक दिन ठहरकर उद्घाटनादि उत्सवों एवं प्रवचनादि कार्यक्रमों को देखकर चले जाते हैं। उसमें जो शिक्षण-प्रशिक्षण के सघन कार्यक्रम चलते हैं उन्हें गहराई से नहीं देखते। अतः वे यही समझते हैं कि शिविरों में अकेले प्रवचन होते हैं।

यह भी हो सकता है कि वे हमारे शिविर की सम्पूर्ण गतिविधियों से परिचित तो हों, पर अत्यधिक श्रमसाध्य होने से अथवा उन्हें चलाने योग्य सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं के अभाव होने से यह सब संभव नहीं हो पाता हो।

जो कुछ भी हो, हम उन्हें अपने सम्पूर्ण कार्यक्रमों को बारीकी से निरीक्षण करने के लिये सादर, सस्नेह, सानुरोध आमंत्रित करते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि यदि वे भी इसप्रकार के शिविरादि कार्यक्रम संचालित करने में हमारा सहयोग चाहेंगे तो हम उन्हें अपनी सीमाओं में रहकर अवश्य सहयोग करेंगे।

भाई, आज की दुनिया संघर्ष की नहीं, सहयोग की दुनिया है। जब एक देश दूसरे देश के विकास में तकनीकी, आर्थिक, बौद्धिक आदि सभी प्रकार का सहयोग करते देखे जाते हैं तो क्या धर्म के क्षेत्र में यह संभव नहीं है। यदि हमने समय को नहीं पहिचाना, युग की आवाज की अनसुनी कर दी तो समय हमें कभी क्षमा नहीं करेगा। जो युग की आवाज को, समय की पुकार को सुनता है, उसके अनुसार चलता है, समय उसका ही साथ देता है।

आशा ही नहीं, हमें पूर्ण विश्वास है कि धार्मिक समाज पवित्र हृदय से किये गये हमारे इस अनुरोध को पवित्र हृदय से ही ग्रहण करेगा।

हमें प्रसन्नता है कि धार्मिक शिक्षा की इस युग में नींव डालने वाले वर्णीजी के शिक्षानगर सागर में ही धार्मिक शिक्षा को गति प्रदान करने वाला हमारा यह उन्नीसवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर लग रहा है। ध्यान रहे, बुन्देलखण्ड की पावन भूमि में यह शिविर ललितपुर में सन् 1976 में लगे शिविर के नौ वर्ष बाद लग रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य की जिस भाव-भूमि में यह शिविर लग रहा है, उससे इसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। कई दृष्टियों से यह शिविर ऐतिहासिक शिविर हो सकता है।

इस शिविर की भावभूमि में एक और भी सहज संयोग बन रहा है। सागर के अत्यन्त निकट खुरई में इसी समय आचार्य श्री विद्यासागरजी के सान्निध्य में धवला की वाचना का कार्यक्रम होने जा रहा है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि वाचना में पधारे विद्वानों का लाभ शिविर

को तथा शिविरार्थियों को आगे-पीछे थोड़ा-बहुत वाचना का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा।

पण्डित कैलाशचन्दजी सिद्धान्ताचार्य, वाराणसी का आशीर्वाद हमारी सम्पूर्ण गतिविधियों को प्रारंभ से ही प्राप्त होता रहा है, पर गर्मियों में लगने के कारण वे आज तक हमारे इस शिविर में नहीं पधार सके। अब उनके समागम एवं मार्गदर्शन का लाभ भी हमें प्राप्त होगा; क्योंकि वे जब खुरई में पधारेंगे तो अत्यन्त निकट होने से हमारे इस शिविर में भी अवश्य पधारेंगे। इसीप्रकार स्थानीय विद्वान होने से डॉ. पन्नालालजी साहित्याचार्य का समागम भी सहज प्राप्त होगा। वयोवृद्धव्रती विद्वान पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी एवं सिद्धान्ताचार्य पंडित फूलचन्दजी तो हमारे शिविरों में कई बार पधार चुके हैं।

हमारे शिविर में दिगम्बर जैन महासमिति के संस्थापक अध्यक्ष स्व. श्री साहू शान्तिप्रसादजी और वर्तमान अध्यक्ष श्री साहू श्रेयांशप्रसादजी, कार्याध्यक्ष श्री रतनलालजी गंगवाल, महामन्त्री श्री सुकुमारचन्दजी, दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्री लालचन्दजी, महामन्त्री श्री जयचन्दजी लोहाड़े तथा श्री एम. के. गाँधी लन्दन, श्री ऋषभ-कुमारजी खुरई, सि. धन्यकुमारजी कटनी आदि अनेक बार पधारकर हमारी शिक्षण पद्धति की भरपूर सराहना कर चुके हैं; समाज के सभी वर्गों का सहयोग हमारे शिविरों को प्राप्त होता रहा है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि हमारा यह शिविर एक ऐतिहासिक शिविर होगा और इसका लाभ हमारी आगामी पीढ़ियों को भी भरपूर प्राप्त रहेगा।

मेरी जन्मभूमि के निकट लगनेवाला यह शिविर वीतरागी तत्त्वज्ञान एवं सदाचारी जीवन की गहरी नींव डालनेवाला प्रमाणित हो •

अठारहवाँ अध्याय

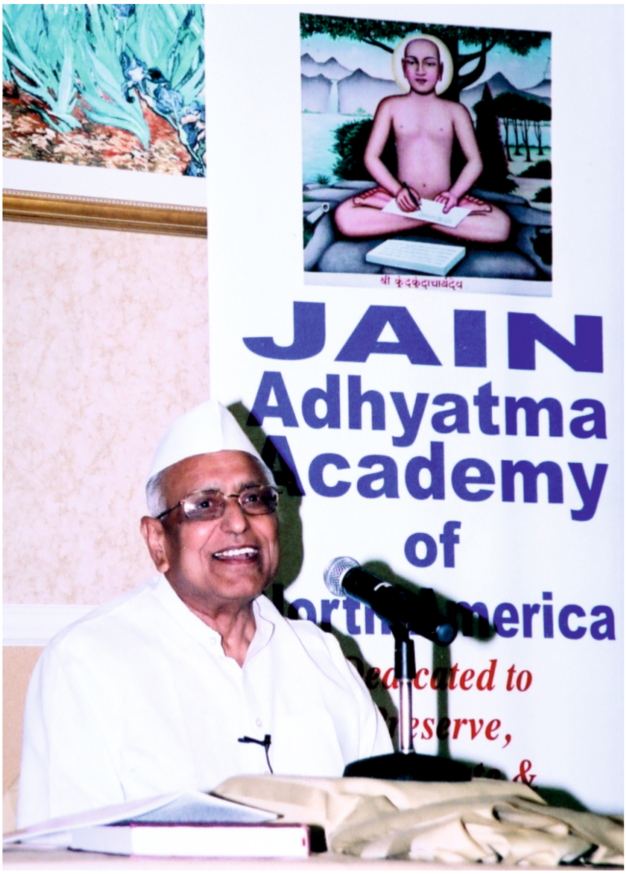

विदेशों में जैनधर्म

यद्यपि मैं वहाँ पहलीबार ही गया था, पर मुझे वहाँ अपरिचित जैसा कुछ भी नहीं लगा, भले ही मैं उन्हें नहीं जानता था, पर वे लोग मेरे से भली-भाँति परिचित थे; क्योंकि उन्होंने मेरे प्रवचनों को तो कई बार सुना ही था, मेरा साहित्य भी पढ़ा था। मेरी क्रान्तिकारी कृति 'क्रमबद्धपर्याय' मुझसे बहुत पहले वहाँ पहुँच चुकी थी। उसने बहुत पहले से भूमि तैयार कर दी थी, जिससे मुझे सर्वत्र बहुत वात्सल्य और अपनत्व मिला। साहित्य भी कितना प्रभावशाली होता है, उसकी पकड़ कितनी गहरी और सुदूरवर्ती होती है - इस बात का अनुभव भी मुझे इस यात्रा के दौरान ही हुआ।

धार्मिक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अमेरिका प्रवास का कार्यक्रम बनाना अत्यन्त कठिन काम है, क्योंकि प्रत्येक नगर वाला यही चाहता है कि उसे शनिवार-रविवार मिले। अभी यह तो संभव नहीं है कि हम दो दिन प्रवचन करें और पाँच दिन आराम से बैठे रहें। ऐसी स्थिति में खींचतान बहुत होती है। अतः एक नगर में गुरु, शुक्र व शनि रखे गए और दूसरे नगर में रवि, सोम और मंगल। बुधवार का दिन और शनिवार की रात यात्रा के लिए रखी गई। इसे प्लेन के कार्यक्रमों से सेट करना बड़ी टेढ़ी खीर थी, पर हिम्मतभाई ने हिम्मत नहीं हारी।

विदेशों में जैनधर्म

जैनसमाज मूलत: व्यापारी समाज रहा है; अत: वह भी विश्व के कोने-कोने में पहुँच गया। यूरोपीय और अमेरिकन देशों की भौतिक समृद्धि ने उसे विशेष आकर्षित किया। अच्छे वेतनमानों में रोजगार के सहज साधन उपलब्ध होने के कारण पढ़ा-लिखा समाज भी विदेशों की ओर विशेष आकर्षित हुआ।

आज अकेले अमेरिका (यू.एस.ए.) में ही पचास हजार जैन रहते हैं। लन्दन (यू.के.) में भी हजारों जैनबन्धु रहते हैं।

जो पीढ़ी भारत से स्वयं वहाँ गई है, उसे तो अपनी संस्कृति और मातृभाषा का सामान्य परिचय है; कुछ लोग थोड़े-बहुत तत्त्वज्ञान से भी परिचित हैं; पर जो पीढ़ी वहाँ ही जन्मी है, वह अपनी संस्कृति, मातृभाषा और जैन तत्त्वज्ञान से लगभग पूर्णत: अपरिचित ही है। सर्वाधिक चिन्ता की बात तो यह है कि मातृभाषा के ज्ञान के अभाव में माध्यम ही समाप्त-सा होता जा रहा है।

विदेशों में बसे जैनबन्धुओं के सामने आज अपनी संस्कृति और तत्त्वज्ञान की सुरक्षा का अहम सवाल उपस्थित है। इस समस्या के समुचित समाधान के लिए विदेशों में बसा जैनसमाज चिंतित भी है; चिंतित ही नहीं, अपनी शक्ति और सुविधा के अनुसार तदर्थ सक्रिय भी है।

इस बात का गहरा अनुभव मैंने अपनी इस विदेशयात्रा में गहराई से किया है। मेरी इस विदेशयात्रा का एकमात्र मूल उद्देश्य यू.एस.ए. और

यू.के. में बसे जैन बन्धुओं तक जैन तत्त्वज्ञान के मर्म को पहुँचाना ही था। साथ ही मैं यह अध्ययन भी करना चाहता था कि विदेशों में बसे जैनबन्धुओं में जैन तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की क्या संभावनाएँ हैं?

इस यात्रा के दौरान लन्दन और अमेरिका के चौदह महानगरों में बसे जैनबन्धुओं से हुए निकट सम्पर्क और चर्चा के आधार पर मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यदि संगठितरूप से योजनाबद्ध प्रयास किये जायें तो भारत की अपेक्षा वहाँ अल्प प्रयत्नों से भी अधिक कार्य हो सकता है; क्योंकि एक तो वहाँ अभी साम्प्रदायिकता की भावना बहुत कम है, दूसरे विदेशों में बसे जैनबन्धु व महिलाएँ सुशिक्षित और प्रतिभासम्पन्न हैं तथा जैन तत्त्वज्ञान के मर्म को बिना भेदभाव के समझने के लिए लालायित भी हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वहाँ लगभग प्रत्येक नगर में 'क्रमबद्धपर्याय' जैसे गूढ़ विषय की चर्चा करनेवाले भी मिले। प्रतिदिन प्रवचन के बाद होनेवाले प्रश्नोत्तरों में सर्वाधिक प्रश्न क्रमबद्धपर्याय संबंधी ही पूछे जाते थे। प्रश्नोत्तरों का मूल विषय या तो तात्त्विक होता था या फिर जैन संस्कृति की सुरक्षा संबंधी उपायों पर मार्गदर्शन चाहा जाता था। सामान्य या ऊटपटाँग प्रश्न बहुत ही कम आते थे। प्रश्नोत्तरों की गंभीरता के साथ-साथ चर्चा में जैन-संस्कृति और तत्त्वज्ञान संबंधी सुरक्षा की चिन्ता अधिक व्यक्त होती थी, जिससे उनके मानस का स्पष्ट पता चलता था।

यद्यपि मैं वहाँ पहलीबार ही गया था, पर मुझे वहाँ अपरिचित जैसा कुछ भी नहीं लगा; क्योंकि मुझे वहाँ अनेक लोग मिले, जिन्होंने मुझे पहिले भारत में कहीं-न-कहीं सुना अवश्य था। भले ही मैं उन्हें नहीं जानता था, पर वे लोग मेरे से भली-भाँति परिचित थे; क्योंकि उन्होंने मेरे प्रवचनों को तो कई बार सुना ही था, मेरा साहित्य भी पढ़ा था। मेरी

क्रान्तिकारी कृति 'क्रमबद्धपर्याय' मुझसे बहुत पहले वहाँ पहुँच चुकी थी। उसने बहुत पहले से भूमि तैयार कर दी थी, जिससे मुझे सर्वत्र बहुत वात्सल्य और अपनत्व मिला। साहित्य भी कितना प्रभावशाली होता है, उसकी पकड़ कितनी गहरी और सुदूरवर्ती होती है – इस बात का अनुभव भी मुझे इस यात्रा के दौरान ही हुआ।

मुनि श्री सुशीलकुमारजी स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु हैं, पर अमेरिका में वे बिना किसी भेदभाव के सभी के मुख में णमोकार मंत्र डाल रहे हैं। उनकी प्रेरणा से न्यूजर्सी में एक सौ सत्ररह एकड़ के विशाल भूखण्ड में एक आश्रम की स्थापना की गई है। उस स्थान का नाम रखा है 'सिद्धाचलम्'। यद्यपि वे स्थानकवासी साधु हैं, मुँहपट्टी लगाते हैं; तथापि उसमें उन्होंने दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों प्रकार की मूर्तियाँ स्थापित कर रखी हैं। वे वहाँ शिखरजी, गिरनारजी, पावापुरी आदि सिद्ध क्षेत्रों के प्रतीक बनाने के साथ-साथ गोम्मटेश्वर बाहुबली की भी स्थापना करना चाहते हैं। वहाँ उनका बच्चों के लिए धार्मिक शिक्षण शिविर चल रहा था, जिसमें छोटे-बड़े 75 छात्र सम्मिलित थे।

जब उन्हें पता चला कि अमेरिका के विभिन्न नगरों के जैन सेन्टरों में मेरे व्याख्यान चल रहे हैं, तो उन्होंने जैन सेन्टरों के फैडरेशन अध्यक्ष डॉ. मनोज धरमसी के माध्यम से शिविर के समापन समारोह में मेरा व्याख्यान 'सिद्धाचलम्' में रखने की व्यवस्था कराई।

उक्त अवसर पर वहाँ लगभग सभी सेन्टरों के पदाधिकारियों के साथ-साथ 75 छात्रों के अभिभावक, छात्र एवं अन्य समाज भी उपस्थित था। वहाँ 'भगवान महावीर और उनकी अहिंसा' विषय पर मेरा व्याख्यान हुआ तथा मुनिश्री के अनुरोध पर श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर से होनेवाली तत्त्व-प्रचार संबंधी गतिविधियों का परिचय भी दिया।

समस्त उपस्थित समाज के साथ-साथ मुनिश्री भी बहुत प्रभावित हुये। मुनिश्री ने व्याख्यान और सुगठित प्रचारतंत्र की हार्दिक प्रशंसा-अनुमोदना करते हुए समस्त अमरीका की जैनसमाज की ओर से मुझे 'जैनरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया, जिसका करतल ध्वनि से सभी समाज ने अनुमोदन किया।

आगामी पीढ़ी में संस्कार सुरक्षित रहें – इस सन्दर्भ में क्या किया जा सकता है? – इसकी चर्चा करते हुए मैंने कहा –

"आपका सद्भाग्य है कि आप लोगों को सप्ताह में शनिवार और रविवार दो दिन का पूर्णावकाश मिलता है। इसमें से एक दिन आप अपने गृहस्थी के कार्यों या घूमने-फिरने में लगाइये और दूसरे दिन प्रत्येक नगर में रहनेवाले जैनबन्धुओं का किसी एक स्थान पर सामूहिक रूप से मिलने का कार्यक्रम रखिए, जिसमें भक्ति-संगीत के साथ-साथ सभी आयुवर्गों के लिए यथासंभव पृथक्-पृथक् धार्मिक अध्ययन, प्रवचन, तत्त्वचर्चा, गोष्ठी आदि के कार्यक्रम होने चाहिये।

इसीप्रकार वर्ष में एक-दो बार सभी नगरों के सामूहिक सम्मेलन भी होने चाहिए, जिसमें सभी लोगों का परस्पर मिलन हो सके। इस सम्मेलन का आधार भी धार्मिक और तात्त्विक ही होना चाहिए।

दूसरे; समय-समय पर भारत से योग्य विद्वानों को बुलाकर उनके कार्यक्रमों के माध्यम से भी जागृति उत्पन्न करनी चाहिए। आपके बालकों को लगभग तीन माह का ग्रीष्मावकाश प्राप्त होता है। उसका पूरा-पूरा सदुपयोग भी जैनसंस्कृति के परिचय में होना चाहिए। जैनसंस्कृति के परिचय के लिए आवश्यक है कि उन्हें अपने सांस्कृतिक केन्द्रों का भ्रमण कराया जाए तथा लगभग एक माह भारतीय पद्धति से जैनदर्शन के अध्ययन में बिताना चाहिए, जिससे उन्हें जैन तत्त्वज्ञान के सामान्य ज्ञान के साथ-साथ भारतीय पद्धति से जीवन जीने का प्रायोगिक ज्ञान भी हो सके।"

उक्त सुझाव देने के साथ-साथ मैंने उन्हें इस कार्य में सहयोग देने का भी आश्वासन दिया। मैंने कहा – ''यदि आप और आपके बालक जैन तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिए जयपुर पधारें तो हमारी संस्था आपके ठहरने, भोजन एवं अध्ययन की यथासंभव अच्छी से अच्छी सुविधा निःशुल्क प्रदान करेगी। यदि आप हमें पहिले से सूचित करके पधारेंगे तो हम आपको सभी तरह से अधिक संतुष्टि प्रदान कर सकेंगे। वैसे ठहरने और भोजन की सामान्य सुविधाएँ तो हमारे यहाँ सतत उपलब्ध रहती ही हैं।''

विदेशों में जन्मी पीढ़ी अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषा समझती ही नहीं है। जैन तत्त्वज्ञान को उन तक पहुँचाने के लिए जैनदर्शन के मर्मज्ञ ऐसे तार्किक विद्वान कहाँ उपलब्ध होंगे, जो उन्हें जैनदर्शन के मर्म को अंग्रेजी भाषा में सतर्क समझा सकें? किसी भाषा में धाराप्रवाह बोलने का अधिकार निरन्तर बोलने के अभ्यास से होता है। भारत में ऐसा वातावरण कहाँ है, जहाँ जैनदर्शन को अंग्रेजी में निरन्तर सुनने के लिए श्रोता उपलब्ध हों? लौकिक बातें अंग्रेजी में कुछ लोग भले ही कर लें, पर आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन असंभव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है।

दूसरी ओर विदेशों में जन्मी भावी पीढ़ी का इतनी अच्छी हिन्दी-गुजराती सीखना भी संभव नहीं लगता कि गूढ़ रहस्य के प्रतिपादक वक्ताओं के भावों को पूर्णतः ग्रहण कर सकें।

''अंग्रेजी के शिक्षक और साहित्य तैयार करने के साथ-साथ बालकों को भी अपनी मातृभाषा का ज्ञान कराया जाना चाहिए।

जो लोग जैन तत्त्वज्ञान और उसके प्रचार-प्रसार में रुचि रखते हों, उन लोगों को भारत आकर जैनदर्शन का थोड़ा-बहुत अध्ययन करना चाहिए। उन्हें हम सब प्रकार की सुविधायें जुटाकर थोड़े ही दिनों मे इस योग्य बना देंगे कि वे लोग अपने नगर के बालकों को अंग्रेजी या उनकी मातृभाषा में जैन तत्त्वज्ञान का सामान्य ज्ञान करा सकेंगे।''

हमारी यह यात्रा लन्दन से आरम्भ हुई थी। सर्वप्रथम हम 26-6-1984 को लन्दन पहुँचे। हमारे साथ कुल अठारह यात्री थे, जिनमें हिन्दी-गुजराती सभी थे। श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमारजी खुरई और सवाई सिंघई धन्यकुमारजी कटनी जैसे लोग भी थे। लन्दन में हमारे सहयात्रियों को थोड़ी कठिनाई अवश्य हुई, पर आगे सब-कुछ व्यवस्थित हो गया।

लन्दन में पाँच प्रवचन और लगभग दस घन्टे तत्त्वचर्चा हुई। ध्यान रहे, सर्वत्र ही एक घन्टे के प्रवचन के उपरान्त लगभग एक घंटा प्रश्नोत्तर होते ही थे। प्रवचनों में 200 से 400 तक उपस्थिति रहती थी और चर्चा में 50 से 100 के बीच। यहाँ दो प्रवचन श्रीमती गुणमाला भारिल्ल के भी हुए।

लन्दन में केन्या से आये बहुत से मुमुक्ष भाई रहते हैं, उनमें जागृति अच्छी है। हमारी प्रेरणा से सप्ताह में एक दिन सामूहिक स्वाध्याय का संकल्प लिया गया और दस-बीस व्यक्तियों के ग्रुप द्वारा एक माह के लिए जयपुर आकर जैनदर्शन के गहरे अध्ययन की भावना भी व्यक्त की गई।

लन्दन के बाद हम 2 जुलाई को न्यूयार्क पहुँचे। न्यूयार्क का कार्यक्रम अन्त में रखा गया था; अतः वहाँ से नाग्राफाल देखते हुए वाशिंगटन चले गए, जहाँ हमें रजनीभाई गोशालिया के यहाँ ठहरने का अवसर मिला। रजनीभाई गहरी पकड़वाले आध्यात्मिक रुचि-सम्पन्न व्यक्ति हैं। वाशिंगटन में हॉल में एक प्रवचन तथा प्रश्नोत्तर एवं रजनीभाई गोशालिया के घर दो दिन तक प्रतिदिन दो-दो घण्टे अनेक बन्धुओं की उपस्थिति में गहरी तात्त्विक चर्चाएँ हुईं। वहाँ से हम लासएंजिल्स पहुँचे, जहाँ रमेशभाई दोशी के यहाँ ठहरना हुआ। यहाँ भी दो प्रवचन एवं लगभग तीन घण्टे तत्त्वचर्चा हुई। एक प्रवचन श्रीमती गुणमाला भारिल्ल का भी हुआ। वहाँ से सानहुजो गये, जहाँ हिम्मतभाई डगली के यहाँ ठहरना हुआ। वहाँ एक प्रवचन और लगभग एक घण्टे तत्त्वचर्चा हुई।

इसके बाद सान्फ्रांसिस्को पहुँचे। सान्फ्रांसिस्को में श्रीमद् रायचन्द्र के अनुयायी गुजरात के पटेल लोग बहुत संख्या में रहते हैं, उनका वहाँ होटल

और मोटलों का धंधा है। वे लोग बड़े भद्र परिणामी लोग हैं। उनके यहाँ भी हमारा एक प्रवचन व चर्चा हुई।

इसके बाद शिकागो पहुँचे। वहाँ भी एक प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा का कार्यक्रम हुआ। इसके बाद क्लीवलैंड पहुँचे, जहाँ डॉ. के. सी. भायजी के यहाँ ठहरे। अन्य स्थानों के समान वहाँ भी प्रवचन और तत्त्वचर्चा के कार्यक्रम हुए। इसीप्रकार डिट्रोयट में भी प्रवचन और चर्चा के कार्यक्रम हुए।

इसके बाद ह्यूस्टन पहुँचे। वहाँ तीन दिन रुके। यहाँ तीन प्रवचन और लगभग पाँच घण्टे की तात्त्विक चर्चा हुई।

इसके बाद फोर्टबर्थ में शैलेश देसाई एवं डलास में अतुल खारा के यहाँ ठहरे। दोनों स्थानों पर प्रवचन और तत्त्वचर्चा के कार्यक्रम पूर्ववत् ही हुए। बोस्टन में जैन सेन्टर के अध्यक्ष डॉ. विनय जैन के यहाँ ठहरना हुआ। यहाँ प्रवचन और चर्चा का कार्यक्रम पूर्ववत् ही हुआ। यहाँ से कार द्वारा डॉ. विनय जैन के परिवार के साथ ही दिनांक 28 जुलाई, 1984 को सिद्धाचलम् पहुँचे।

बोस्टन, न्यूयार्क और न्यूजर्सी में जिनमन्दिर भी हैं; जिनमें दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों प्रकार की ही मूर्तियाँ हैं। यहाँ जिनमन्दिर चर्च खरीदकर बनाये गये हैं; अतः उनकी बाहरी रूपरेखा चर्चों जैसी ही है, जिनमन्दिरों जैसी नहीं। प्रत्येक में प्रवचन हॉल भी है, जिनमें 300-400 आदमी बैठ सकते हैं। तीन स्थानों पर प्रवचन आदि के कार्यक्रम उन्हीं जिनमन्दिरों के हॉल में हुए। न्यूयार्क और न्यूजर्सी में तीन प्रवचन हुए। न्यूयार्क में तो इतने लोग इकट्ठे हुए कि कुछ लोगों को बाहर खड़ा रहना पड़ा। प्रत्येक प्रवचन के बाद लगभग 1 घण्टे 30 मिनट चर्चा हुई। इसके अतिरिक्त डॉ. महेन्द्र पाण्ड्या एवं श्री दिलीपजी सेठी के घर भी तत्त्वचर्चा के कार्यक्रम रखे गये। इन तत्वचर्चा के कार्यक्रमों में भी पहले तो एक घण्टे गम्भीर विषय पर प्रवचन जैसा ही होता था, बाद में लगभग एक घण्टे चर्चा चलती थी।

न्यूयार्क में हम श्री सुशीलकुमारजी गोदीका के घर ठहरे थे। जिस पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने आज देश-विदेश में सभी जगह जैन तत्त्वज्ञान को घर-घर पहुँचाने का बीड़ा उठा रखा है, उस ट्रस्ट के संस्थापक अध्यक्ष सेठ श्री पूरणचन्दजी गोदीका के वे सुपुत्र हैं एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी भी हैं।

इस सम्पूर्ण यात्रा में जिन पन्द्रह स्थानों पर हमारे प्रवचनादि कार्यक्रम हुए, उनकी उपस्थिति का अनुपात यदि 125 से 130 के बीच भी मानें तो दो हजार से अधिक लोगों ने हमें सुना है; क्योंकि ये स्थान एक-दूसरे से इतने दूर हैं कि एक स्थान के श्रोता का दूसरे स्थान पर पहुँचना सम्भव नहीं है। यदि एक व्यक्ति ने अपने दो-दो इष्ट-मित्रों से भी इसकी चर्चा की हो, उन्हें टेप उपलब्ध कराये हों तो छह हजार लोगों तक वीतरागी तत्त्व पहुँचा है। ये छह हजार भारत के साठ हजार से कम नहीं; क्योंकि ये सभी शिक्षित और प्रतिभाशाली लोग थे, भारत के श्रोताओं में तो पढ़-अपढ़ सभी रहते हैं।

मैं अपनी इस यात्रा को यू.के. और यू.एस.ए. में गहरे जैन तत्त्वज्ञान के भवन का शिलान्यास समझता हूँ।

विश्व के कोने-कोने में भारतीय जैनों का आवास है। अकेले अमेरिका (यू. एस. ए.) में पचास हजार जैन रहते हैं। कनाडा में भी प्रचुर मात्रा में जैनों का निवास है। ब्रिटेन, बेल्जियम आदि यूरोपीय देशों एवं केन्या आदि अफ्रीकी देशों की भी यही हालत है।

अमेरिकन, अफ्रीकी एवं यूरोपीय देशों में बसे जैनों से अनेक बार हुए निकट सम्पर्क के आधार पर मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आज जैनेतरों को जैन बनाने की अपेक्षा जैनों को ही जैन बनाये रखने की आवश्यकता अधिक है।

धर्मप्रेमी विदेशी बन्धुओं के अनुरोध पर वहाँ से आते ही मैंने जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों का सामान्यज्ञान एवं सदाचार की प्रेरणा देनेवाली

बालकोपयोगी धार्मिक पाठ्यपुस्तकों का अनुवाद कार्य तेजी से आरम्भ कराया, उन्हें छपाने की त्वरित व्यवस्था की और छह माह के भीतर ही बालबोध पाठमाला भाग 1-2-3 तथा वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 1-2-3 - इसप्रकार छह पुस्तकें अंग्रेजी में छपकर तैयार हो गई।

उक्त छह पुस्तकों के एक हजार सेट लेकर मैं इस वर्ष दुबारा यू. के. और यू. एस. ए. की यात्रा पर निकला।

हमारे इस प्रवास में जैन सेन्टरों में तो हमारे व्याख्यान हुए ही, अनेक हिन्दू मन्दिरों में भी हमारे प्रवचन हुए। ह्यूस्टन के हिन्दू मन्दिर में जब हम व्याख्यान देने गए तो वहाँ सत्यनारायण की कथा चल रही थी ।

शताधिक श्रोताओं की उपस्थिति में जब हमने भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता एवं सत्यनारायण की कथा की सार्वभौमिकता पर प्रकाश डाला तो लोग गद्गद हो गए।

जैन सेन्टरों में हुए कार्यक्रमों में वाशिंगटन में लगा शिविर उल्लेखनीय है। वहाँ प्रवचन, कक्षा एवं चर्चा सब-कुछ मिलाकर चौदह घण्टे के कार्यक्रम हुए। बार-बार सुनने के लिए सभी कार्यक्रम टेप किये गये। भेद-विज्ञान, साततत्त्व, बारहभावना, जैनदर्शन की संक्षिप्त रूपरेखा जैसे विषयों पर गंभीर विवेचन, गहरा शिक्षण एवं ज्ञानवर्द्धक तत्त्वचर्चा हुई।

वाशिंगटन में 130 घर जैन सेन्टर के सदस्य हैं। जैन सेन्टर के द्वारा बालबोध पाठमाला भाग 1-2-3 एवं वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 1-2-3 अंग्रेजी भाषा की छहों पुस्तकों के सेट प्रत्येक घर पर पहुँचाए गए। आगामी वर्ष के शिविर के लिए अभी से स्थान बुक कर लिया गया है।

हमारी 1985 की यह यात्रा एन्टवर्प (बेल्जियम) से आरम्भ हुई। इस यात्रा में मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी श्रीमती गुणमाला एवं मेरे प्रिय मित्र श्री सोहनलालजी जैन, जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर भी थे।

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बहुत लोग साथ जाने के इच्छुक थे, पर गत वर्ष के अनुभव के आधार पर इस वर्ष अकेले जाने में ही भलाई प्रतीत हुई।

धर्मप्रचार और घूमना – दोनों विरोधी कार्य हैं। हम अपना सम्पूर्ण कार्यक्रम धर्मप्रचार की दृष्टि से बनाना चाहते हैं और साथ जानेवालों को घूमने की भी इच्छा रहती है, तथा कुछ लोग तो मात्र घूमने के उद्देश्य से ही साथ हो जाते हैं। दूसरे जिन लोगों ने हमें यहाँ बार-बार सुना है, वे भी सुनने की अपेक्षा घूमने में अधिक रस लेते हैं। धर्मप्रचार और घूमने के स्थान भी अलग-अलग हैं; अतः कार्यक्रम गड़बड़ा जाता है।

हम तो जैन बन्धुओं के घर ठहरते हैं, पर साथियों को होटल में ठहरने की व्यवस्था करनी होती है, क्योंकि अधिक लोगों को घरों में ठहराना सम्भव नहीं होता। इस स्थिति में हमारा साथियों से सम्पर्क भी कट जाता है।

एन्टवर्प में हम निरुपम मुकुन्दभाई खारा के घर ठहरे। उनके सद्प्रयत्नों से एन्टवर्प का कार्यक्रम आशा से अधिक सफल रहा। वहाँ एक सौ छह लोग प्रवचन सुनने आए थे। एक घंटा 'अहिंसा' पर व्याख्यान होने के बाद प्रश्नोत्तर चले। साहित्य भी सभी लोग ले गए। इसके पूर्व निरुपम खारा के घर तीन दिन तक चर्चा एवं बच्चों की कक्षा का कार्यक्रम चला। बच्चों की कक्षा गुणमाला भारिल्ल ने ली, जिसमें उन्होंने पाठमाला भाग 1 के चार पाठ पढ़ाये। 27 छात्र पढ़ने आते थे। एन्टवर्प में 150 घर पालनपुरी जैनों के हैं, जो सभी हीरे के व्यापारी हैं।

इसके बाद लन्दन पहुँचे, वहाँ 26 जून, 1985 से 30 जून, 1985 तक प्रतिदिन नवनाथ भवन में भेदविज्ञान और आत्मानुभूति जैसे गम्भीर विषयों पर मार्मिक प्रवचन हुए।

वहाँ हमारे प्रवचनों के कैसेट तत्काल तैयार करके बिक्री की व्यवस्था की गई थी, जिसमें सैकड़ों कैसेट बिके।

लन्दन से साठ मील दूर एक 'लिस्टर' नामक नगर है। वहाँ एक विशाल जैन मन्दिर बन रहा है। मन्दिर बहुत विशाल है; पर चर्च खरीद कर बनाया जा रहा है, अतः उसका स्वरूप बाहर से मन्दिर जैसा नहीं लगता। उसमें एक कमरे में दिगम्बर प्रतिमा भी विराजमान होगी। इस मन्दिर में भी हमारा एक व्याख्यान हुआ।

इसप्रकार लन्दन में भरपूर धर्मप्रभावना कर हम 2 जुलाई को न्यूयार्क पहुँचे। वहाँ 7 जुलाई तक ठहरे। 'सिद्धाचलम्' में बच्चों के शिविर का उद्घाटन 6 जुलाई को था, जिसमें हमारा व्याख्यान हुआ।

6 जुलाई की शाम को हमारा व्याख्यान न्यूजर्सी जैन सेन्टर में था और 7 जुलाई रविवार को दोपहर में न्यूयार्क जैन सेन्टर में प्रवचन रखा गया था। 3 व 4 जुलाई को निर्मल दोशी के घर एवं 5 जुलाई को डॉ. पाण्डया के घर तत्त्वचर्चा के कार्यक्रम रखे गए थे।

प्रत्येक प्रवचन और चर्चा टेप तो किए ही जाते थे। जहाँ भी हम ठहरे, वहाँ गतवर्ष के टेप लोगों के घरों में थे और सुने जाते थे। वहाँ लोग काम पर जाते समय कार में टेप लगा लेते हैं और सुनते जाते हैं। सभी के ऑफिस का रास्ता लगभग एक घंटे का तो होता ही है। अतः उन्हें पढ़ने की अपेक्षा सुनने में अधिक सुविधा रहती है। डिट्रोयट में लक्ष्मीचन्दभाई ग्रोगरी ने तो हमें पुराना टेप सुनाकर माँग की कि हमें तो ऐसा गहरा व्याख्यान चाहिए। साथ में यह भी बताया कि हम आपके इस व्याख्यान को पन्द्रह बार सुन चुके हैं।

बारहभावना के 15 कैसेट हम भेंट देने के लिए ले गए थे। जहाँ-जहाँ ठहरे, लगभग सभी जगह वे भेंट किए। उनसे सैकड़ों टेप उतार लिए गए। इसप्रकार बारहभावना के कैसेट भी घर-घर पहुँच गए और

दफ्तर जाते समय सिनेमा के गीतों के स्थान पर वे बजने लगे हैं।

अमेरिका में 90 मिनट वाले कैसेट अधिक चलते हैं। अतः डॉ. मनोज धरमसी भाई ने वाशिंगटन के शिविर में कहा कि 45 मिनट की बारह भावना है, 45 मिनट का एक प्रवचन भी आप इन्हीं बारह भावनाओं पर कर दीजिए। इसप्रकार 90 मिनट की कैसेट तैयार की गई और उसकी प्रतिलिपियाँ भी खूब हुईं।

जैनमन्दिर की स्थापना का रहस्य बताते हुए न्यूजर्सी में एक भाई ने हमें बताया कि मेरा 7-8 वर्ष का बच्चा एक दिन बोला -

''क्यों पापा, क्या अपना कोई गॉड नहीं है, क्या अपना कोई चर्च नहीं है, क्या अपनी कोई प्रेयर नहीं है ? यदि नहीं है तो मैं अपने दोस्त के साथ उसके चर्च में ही चला जाऊँ ?'' बालक के इस अबोध उपदेश ने उन्हें मन्दिर बनाने के लिए प्रेरित किया था।

8 जुलाई, 1985 को हम न्यूयार्क से सीधे लासएंजिल्स पहुँचे। वहाँ हम रमेशभाई दोशी के यहाँ ठहरे। एक व्याख्यान उनके घर एवं एक व्याख्यान डॉ. मणीभाई मेहता के घर पर हुआ।

लासएंजिल्स से 11 जुलाई को सान्फ्रांसिस्को पहुँचे। वहाँ श्री हिम्मतभाई डगली के घर ठहरे। उन्होंने यह अनुभव किया कि कार्यक्रम लेट बनने से समुचित प्रचार नहीं हो पाता। यदि कार्यक्रम बहुत पहले निश्चित हो जाये तो इससे चौगुनी जनता लाभ ले सकती है। अतः उन्होंने रात के दो बजे तक आगामी वर्ष का एक अनुमानित कार्यक्रम तैयार किया।

धार्मिक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अमेरिका प्रवास का कार्यक्रम बनाना अत्यन्त कठिन काम है, क्योंकि प्रत्येक नगर वाला यही चाहता है कि उसे शनिवार-रविवार मिले। अभी यह तो संभव नहीं है कि हम दो दिन प्रवचन करें और पाँच दिन आराम से बैठे रहें। ऐसी स्थिति में

खींचतान बहुत होती है। अतः आगामी कार्यक्रम बनाते समय एक बात सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर ली गई कि कार्यक्रम ऐसा बनाया जाए कि प्रत्येक नगर को एक शनिवार या रविवार मिल जाए।

इसप्रकार एक नगर में गुरु, शुक्र व शनि रखे गए और दूसरे नगर में रवि, सोम और मंगल। बुधवार का दिन और शनिवार की रात यात्रा के लिए रखी गई। इसे प्लेन के कार्यक्रमों से सेट करना बड़ी टेढ़ी खीर थी, पर हिम्मतभाई ने हिम्मत नहीं हारी और सुन्दरतम कार्यक्रम सेटकर फैडरेशन के अध्यक्ष डॉ. सालगिया के पास भेज दिया। उसकी कुछ कापियाँ हमें भी दीं। हमने आगे के प्रवास में जहाँ भी इसकी चर्चा की, सभी ने दिल खोलकर स्वागत किया ।

इसमें कई नगर ऐसे भी हैं, जो आपस में मिलकर किसी एक ही स्थान पर केम्प का आयोजन करने की सोच रहे हैं। आशा है कि आगामी वर्ष वाशिंगटन जैसे अनेक शिविर लगेंगे।

सान्फ्रांसिस्को में एक व्याख्यान वैदिकधर्म समाज के मन्दिर में एवं एक व्याख्यान प्रोफेसर प्रकाश जैन के घर पर हुआ। सान्फ्रांसिस्को से हम ह्यूस्टन पहुँचे, वहाँ एक प्रवचन हिन्दूवर्शिप मन्दिर में तथा एक प्रवचन जैन सोसाइटी के हॉल में हुआ। वहाँ से हम डलास और डलास से क्लीवलेन्ड पहुँचे। दोनों ही जगह अच्छे कार्यक्रम हुए।

इसके बाद हम डिट्रोयट पहुँचे। यहाँ यूनिटेरियल चर्च हॉल के अतिरिक्त अनन्त कोरड़िया, राज जैन एवं कुलीन शाह के घर भी एक-एक प्रवचन और चर्चा के कार्यक्रम रखे गए।

वहाँ से टोरन्टो पहुँचे। टोरन्टो में तीन सौ से भी अधिक जैन परिवार रहते हैं। यहाँ हिन्दीभाषी जैन भी बहुत हैं। यहाँ जैन मन्दिर की स्थापना भी हो चुकी है। मन्दिर के हॉल में हमारे प्रवचनों के लगातार तीन दिन तक कार्यक्रम रखे गए, जो बहुत प्रभावक सिद्ध हुए।

टोरन्टो से हम रोचेस्टर पहुँचे। वहाँ हमारे कार्यक्रम को एक पिकनिक का रूप दिया गया था, जिसमें सम्पूर्ण जैन समाज उपस्थित था, वहाँ अहिंसा पर मार्मिक प्रवचन हुआ। दूसरे दिन इण्डियन कम्यूनिटी हॉल में प्रवचन हुआ। वहाँ इण्डियन कम्यूनिटी ने एक बहुत बड़ा स्थान लिया है, जिसमें तीन तो बड़े-बड़े हॉल हैं, जिनमें हजारों लोग एक साथ बैठ सकते हैं। अनेक कमरे और भी हैं।

वहाँ से हम बोस्टन पहुँचे, जहाँ हम पहले दिन बुस्टर में संजय शाह के घर प्रवचन-चर्चा का कार्यक्रम रखा गया। दूसरे दिन जैन सेन्टर के हॉल में प्रवचन चर्चा रखी गई। तीसरे दिन डॉ. विनय जैन के घर चर्चा का कार्यक्रम हुआ। अन्त में हम सिनसिनाटी पहुँचे, जहाँ जैन फैडरेशन के महामंत्री सुलेख जैन रहते हैं। वहाँ हिन्दू मन्दिर के हॉल में प्रवचन हुआ। लगभग प्रत्येक स्थान पर एक व्याख्यान तो 'आधुनिक विज्ञान और धर्म' विषय पर हुआ ही।

इसप्रकार अनेक उपलब्धियों से समृद्ध आठ सप्ताह का यह विदेश प्रवास 12 अगस्त को हमारे न्यूयार्क से रवाना होने पर समाप्त हुआ और हम 14 अगस्त, 1985 को जयपुर आ पहुँचे। •

"जब एक देश दूसरे देश के विकास में तकनीकी, आर्थिक, बौद्धिक आदि सभी प्रकार का सहयोग करते देखे जाते हैं तो क्या धर्म के क्षेत्र में यह संभव नहीं है।"

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

उन्नीसवाँ अध्याय

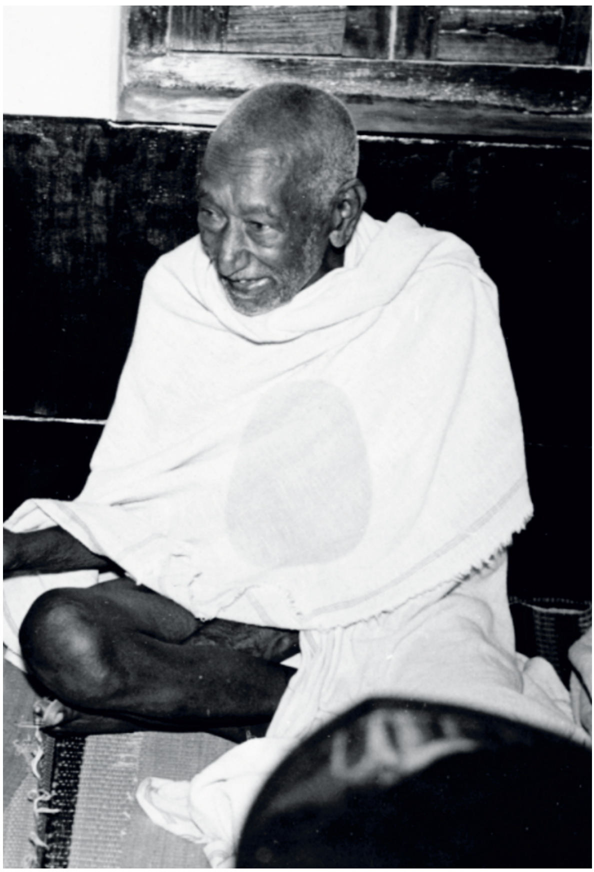

वर्णीजी का समागम

हम दोनों भाइयों ने मिलकर सोचा कि सोनगढ़ की तो बात समझ ली और चित्त को स्वीकृत भी हुई है; परन्तु इस युग में एक महापुरुष और हैं उनकी बात भी समझना चाहिए, उनका भी लाभ लेना चाहिए। उनका नाम है क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी, न्यायाचार्य। उनकी भी उम्र हो गयी है और अब वे किनारे पर ही हैं। अतः उनका लाभ लेने के लिए, उनसे वस्तु का सही स्वरूप समझने के लिए इस वर्ष उनके पास चलना चाहिए।

मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझ रहा था। मैंने उन सब विषयों पर चर्चा की, जो उस समय विवाद के विषय थे।

अन्त में अत्यन्त विनयभाव से वर्णीजी से पूछा कि आपकी हमको क्या सलाह है?

उन्होंने अत्यन्त वात्सल्यभाव से कहा –

अच्छा, बहुत अच्छा; भैया! हमारा तो यही कहना है कि किसी के कहने से अपनी श्रद्धा को बिगाड़ना नहीं।

वर्णीजी का समागम

हम दोनों भाई सन् 1958 में सोनगढ़ शिविर में गये थे। वहाँ स्वामीजी, रामजीभाई एवं खीमचन्दभाई का भरपूर लाभ लिया। वहाँ स्वामीजी के दो समय प्रवचन और शाम को पौन घण्टे की चर्चा का भरपूर लाभ लिया। रामजीभाई की उत्तम कक्षा का लाभ लिया; जिसमें उन्होंने 'पुरुषार्थ से ही मोक्ष प्राप्ति' वाला मोक्षमार्ग प्रकाशक के नौवें अध्याय का विषय लिया था और खीमचन्दभाई प्रश्नोत्तरमाला लेते थे। हम उसमें भी बैठते थे।

हम दोनों भाइयों ने मिलकर सोचा कि सोनगढ़ की तो बात समझ ली और चित्त को स्वीकृत भी हुई है; परन्तु इस युग में एक महापुरुष और हैं उनकी बात भी समझनी चाहिए, उनका भी लाभ लेना चाहिए। उनका नाम है क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी, न्यायाचार्य। उनकी भी उम्र हो गयी है और अब वे किनारे पर ही हैं। अतः उनका लाभ लेने के लिए, उनसे वस्तु का सही स्वरूप समझने के लिए इस वर्ष उनके पास चलना चाहिए। वे अभी शिखरजी के पास ईसरी में हैं। अतः हमको ईसरी चलना चाहिए और हम दोनों भाई ईसरी को चल दिए।

यद्यपि हमारी उम्र उस समय अधिक नहीं थी। मैं तो 23-24 वर्ष का ही था और भाईसाहब मुझसे ढाई वर्ष बढ़े थे; पर हमारी आत्मकल्याण करने की भावना बहुत प्रबल थी। अतः घर के कामों में अधिक नहीं उलझे; जबकि स्थिति ऐसी नहीं थी।

हम ईसरी पहुँचे और वहाँ वर्णीजी से मिले। हम 23-24 वर्ष के और वर्णीजी 85 वर्ष के थे।

वर्णीजी बीमार चल रहे थे। फिर भी उन्होंने हमें मिलने का समय दिया और बड़े ही वात्सल्यभाव से मिले।

हमने अपना परिचय दिया और अपनी भावना बताई। उन्होंने अत्यन्त वात्सल्यभाव से कहा – ''भैया! हम तो अभी प्रवचन कर नहीं सकते, तुम प्रवचन करो; हम सुनेंगे।''

हम तो गद्‌गद हो गये। हमने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा – ''यदि आप सुनेंगे तो हम अवश्य प्रवचन करेंगे।''

वहाँ हमेशा पण्डित शिखरचन्दजी प्रवचन करते थे। उनके स्थान पर मैंने प्रवचन आरम्भ किए।

आठ दिन तक लगातार प्रवचन करता रहा और बीमार स्थिति में भी वर्णीजी प्रवचन सुनने आते रहे।

मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझ रहा था। मैंने उन सब विषयों पर चर्चा की, जो उस समय विवाद के विषय थे।

अन्त में अत्यन्त विनयभाव से वर्णीजी से पूछा कि आपकी हमको क्या सलाह है?

उन्होंने अत्यन्त वात्सल्यभाव से कहा –

''अच्छा, बहुत अच्छा; भैया! हमारा तो यही कहना है कि किसी के कहने से अपनी श्रद्धा को चिगाड़ना (बिगाड़ना) नहीं।''

हमें यह आठ दिन का वर्णीजी का समागम बहुत अच्छा लगा। उसके बाद ब्र. सुरेन्द्रकुमारजी हमें कलकत्ता ले गये और उन्होंने वहाँ छोटे और बड़े मन्दिर दोनों में ही हमारे प्रवचन कराये, जो सभी को बहुत पसन्द आये।

छोटे मन्दिर में ऊपर पण्डित बाबूलालजी वक्ता प्रवचन करते थे और नीचे वीरचन्द्रभाई मोटानी प्रवचन करते थे। नीचे वाला प्रवचन सोनगढ़ वालों का था। हमारे प्रवचन ब्रह्मचारीजी ने दोनों जगह कराये और हमें यह बताकर बहुत प्रसन्नता हो रही है कि दोनों ही जगह हमारे प्रवचन सभी को पसन्द आये।

उस समय समाज में जो भी अध्यात्म के रसिया विशेषज्ञ विद्वान थे, व्रती थे, ब्रह्मचारी थे; यथासंभव सभी के सत्समागम में हम रहे। उनकी प्रतिभा का लाभ तो लिया ही, हम अपने विचार भी उनके सामने प्रस्तुत करते रहे।

विपरीतवृत्ति वालों से माध्यस्थ भाव रखना ही उचित लगा।

वर्णीजी तो एक-दो वर्ष में ही चले गये, पर स्वामीजी का सत्समागम हमें 23-24 वर्ष तक लगातार मिलता रहा। हमने उनके सत्समागम का भरपूर लाभ लिया। अपने अध्ययन एवं वृत्ति और प्रवृत्ति से उनके चित्त को प्रसन्न किया और भरपूर वात्सल्यभाव प्राप्त किया। ●

" जिनवाणी का अध्ययन उलझना नहीं,
सुलझना है और
पण्डित बनना हीनता की नहीं,
गौरव की बात है। "

" असफलता के समान
सफलता को पचा पाना भी
हर एक का काम नहीं। "

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

पूरी सीधी आत्मकथा

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।
मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझ में कुछ गंध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी,
पर से कुछ भी संबंध नहीं।।
मैं रंग राग से भिन्न,
भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखंड चैतन्य पिंड,
निज रस में रमने वाला हूँ।।
मैं ही मेरा कर्ता धर्ता,
मुझमें पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं।।
मैं शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक,
पर परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।।
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।

अधूरी उल्टी आत्मकथा

मेरी रचनाएँ

	नाम	पृष्ठ	वर्ष
उपन्यास	सत्य की खोज	264	1973
खण्डकाव्य	पश्चाताप	80	1954
आत्मकथा	अधूरी उल्टी आत्मकथा	198	2023
पीएच. डी.	पं. टोडरमल : व्यक्तित्व-कर्तृत्व	399	1973
नाटक	भरत का अन्तर्द्वद्व	144	....
आलेख संग्रह	बिखरे मोती	232	1999
साक्षात्कार	चैतन्य चमत्कार	69	1981
पत्रिका	वीतराग विज्ञान	36	प्रतिमाह
महाकाव्य	वैराग्य	234	....
	भरत का अन्तर्द्वन्द्व	234	2020
कहानियाँ	आप कुछ भी कहो	104	1984
	ये हैं मेरी नारियाँ	52	....
कालजयी रचनाएँ	परमभावप्रकाशक नयचक्र	368	1982
	क्रमबद्धपर्याय	134	1980
	धर्म के दश लक्षण	198	1977
टीकाएँ	ज्ञायकभावप्रबोधनी (समयसार)	648	2006
	ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधनी (प्रवचनसार)	484	2008
	आत्मतत्त्वप्रबोधनी (नियमसार)	496	2012
यात्रा वृत्तांत	विदेशों में जैनधर्म : उभरते पदचिन्ह	56	1993
	विदेशों में जैनधर्म : बढ़ते कदम	48	1993
	विदेशों में अध्यात्म की जागती जिज्ञासा	64	1993
	विदेशों में धूम क्रमबद्धपर्याय की	64	1993
सार संक्षिप्त कृति	समयसार का सार	400	2003
	प्रवचनसार का सार	408	2005
	छहढाला का सार	156	2009
	मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार	400	2007

मेरी रचनाएँ

	नाम	पृष्ठ	वर्ष
विधान	समयसार महामंडल विधान	240	2016
	प्रवचनसार महामंडल विधान	109	2016
	नियमसार महामंडल विधान	123	2017
	अष्टपाहुड महामंडल विधान	164	2018
	द्रव्यसंग्रह महामंडल विधान	40	2019
	पंचास्तिकाय महामंडल विधान	63	2019
	चौबीस तीर्थंकर विधान	32	2018
	योगसार महामंडल विधान	50	2018
	लघु समयसार मंडल विधान	32	2016
	समयसार कलश विधान	110	2016
पद्यानुवाद	समयसार पद्यानुवाद	88	1988
	समयसार कलश पद्यानुवाद	130	1997
	प्रवचनसार पद्यानुवाद	76	2005
	नियमसार पद्यानुवाद	42	2011
	नियमसार कलश पद्यानुवाद	158	2011
	द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	13	2003
	योगसार पद्यानुवाद	122	1991
	कुन्दकुन्द शतक पद्यानुवाद	36	1988
	शुद्धात्म शतक पद्यानुवाद	36	1989
	अष्टपाहुड पद्यानुवाद	107	2005
निबन्ध	अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	40	1985
	मैं कौन हूँ	72	1975
	अनेकांत स्याद्वाद	16	1974
	शाकाहार : जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में	24	1991
	निमित्तोपादान	56	1991
	मैं स्वयं भगवान हूँ	68	2000

मेरी रचनाएँ

अनुशीलन

नाम	पृष्ठ	वर्ष
समयसार अनुशीलन भाग - 1	483	1993
समयसार अनुशीलन भाग - 2	384	1995
समयसार अनुशीलन भाग - 3	384	1997
समयसार अनुशीलन भाग - 4	393	1999
समयसार अनुशीलन भाग - 5	536	2001
प्रवचनसार अनुशीलन भाग - 1	435	2005
प्रवचनसार अनुशीलन भाग - 2	466	2007
प्रवचनसार अनुशीलन भाग - 3	332	2008
नियमसार अनुशीलन भाग - 1	316	2009
नियमसार अनुशीलन भाग - 2	258	2010
नियमसार अनुशीलन भाग - 3	320	2012
रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	112	2001
कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन	232	2015
योगसार अनुशीलन	48	2012
मैं ज्ञानान्द स्वभावी हूँ : एक अनुशीलन	48	2015
तत्त्वार्थमणि प्रदीप	224	2013
णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	112	2001
बारह भावना : एक अनुशीलन	182	1988

अन्य कृतियाँ

सूक्ति सुधा	259	2000
चिन्तन की गहराइयाँ	437	1999
बिन्दु में सिन्धु	40	2000
रीति-नीति	64	2000
गागर में सागर	80	2000
ध्यान का स्वरूप	32	2009
सिद्ध भक्ति	112	1982
बढ़ते कदम	121	2004
अध्यात्मनवनीत	32	2005

मेरी रचनाएँ

	नाम	पृष्ठ	वर्ष
जीवनी	भ. महावीर और उनकी जन्मभूमि	24	2013
	ती. महावीर और उनका सर्वोदयतीर्थ	200	1974
	तीर्थंकर भगवान महावीर	24	1973
	गोम्मटेश्वर बाहुबली	16	1981
	वीतरागी व्यक्तित्व भ. महावीर	16	1974
	युगपुरुष कानजीस्वामी	16	1974
गद्य मौलिक रचनाएँ	दृष्टि का विषय	128	2001
	47 शक्तियाँ 47 नय	128	2008
	समाधिमरण या सल्लेखना	56	2015
	गोली का जवाब गाली से भी नहीं	32	1999
	पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	96	1990
	शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर	24	1991
	रक्षाबंधन और दीपावली	48	2005
	आ कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम	156	1981
पद्य मौलिक रचनाएँ	क्रमनियमितपर्याय	16	2019
	तत्त्व चिंतन	48	2019
	बारह भावना जिनेन्द्र वंदना	96	1987
	सप्त शतक	148	2020
	श्रमण शतक	32	2019
	समाधि का सार	28	2019
	अर्चना	16	1972
	आखिर हम क्या करें?	32	2019
शैक्षणिक कृति	बालबोध पाठमाला भाग- 2,3	36, 32	1968-69
	वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग- 1, 2, 3	30, 46, 46	1967-68-69
	तत्वज्ञान पाठमाला भाग- 1, 2	63, 68	1969-74
	वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	158	1971

अधूरी उल्टी आत्मकथा

मेरी उपाधियाँ

संस्कृत साधना सम्मान
14 अगस्त 2019
संस्कृत शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा

समयसार शिखरपुरुष
2016
आचार्य विद्यानंदजी महाराज द्वारा समयसार संगोष्ठी के अवसर पर

स्वरूप साधक
25 मई 2014
श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द कहान परमागम मन्दिर ट्रस्ट, द्वारा

Jewel of Jain World
2013
जैन वर्ल्ड फाउॅडेशन द्वार

ज्ञान कुबेर
25 दिसम्बर 2015
श्रवणबेलगोला में महामस्तक अभिषेक के अवसर पर

संस्कृत सेवाव्रती सम्मान
10 अगस्त 2014
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानव संसाधन मंत्रालय) भारत सरकार द्वारा

डी.लिट्.
28 अगस्त 2014
मंगलायतन विश्वविद्यालय द्वारा

जैनरत्न
11 दिसम्बर 2011
इंटरनेशनल महावीर जैन मिशन, न्यूजर्सी द्वारा

विद्वत निर्माता
1 मार्च 2010
कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन मुमुक्षु आश्रम, कोटा द्वारा

तत्त्व प्रभावक
14 मार्च 2010
अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन, सागर संभाग द्वारा

श्रुत संवर्धक
8 अप्रैल 2010
दि. जैन स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट
अ. भा. जैन युवा फैडरेशन
महावीर विद्यानिकेतन, नागपुर द्वारा

लोकनायक
25 जून 2010
पूज्य कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली द्वारा

अधूरी उल्टी आत्मकथा

मेरी उपाधियाँ

तीर्थरत्न
16 मार्च 2010
जैन युवा शास्त्री परिषद्
सकल दिगम्बर जैनसमाज
अ. भा. जैन युवा फेडरेशन,
खड़ैरी द्वारा

अध्यात्म तत्त्ववेत्ता भूषण
25 मई 2010
अखिल भारतीय
जैन युवा फेडरेशन,
दिल्ली प्रदेश द्वारा

सन्मार्ग दिवाकर
18 अप्रैल 2010
श्री दिगम्बर कुन्दकुन्द कहान
परमागम मन्दिर ट्रस्ट,
विश्वासनगर दिल्ली द्वारा

विद्यावाचस्पति
06 अप्रैल 2009
सकल जैन समाज,
उदयपुर द्वारा

धर्म गूढ़ार्थ प्रकाशकमणि
2009
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु
मण्डल, छत्तीसगढ़
द्वारा

विद्वत शिरोमणि
04 अक्टूबर 2009
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल
हीरक जयंती समारोह समिति
राष्ट्रीय समिति, बापूनगर
जयपुर

विशेष सम्मान
2007
फेडरेशन ऑफ़ जैन
असोशिएशन इन नॉर्थ
अमेरिका द्वारा

अध्यात्म विशारद
2006
तारण तरण जैन तीर्थक्षेत्र
निसईजी, मल्हारगंज,
गुना द्वारा

विशिष्ट सम्मान
20 जून 2009
जैन सोसायटी
ऑफ शिकागो
प्रतिष्ठा महोत्सव

बुन्देलखण्ड रत्न
14 दिसम्बर 2008
तीर्थधाम सिद्धायतन
बुन्देलखण्ड क्षेत्रीय मुमुक्षु
मण्डल द्वारा

समयसार रत्न
19 जनवरी 2006
अखिल भारतीय तारणतरण
दिगम्बर जैन महासभा,
निसईजी द्वारा

वाणी विभूषण
......
जैन अध्यात्म स्टेडी सर्किल,
मुम्बई, द्वारा

मेरी उपाधियाँ

विद्वत शिरोमणि
24 अप्रैल 2002
अ.भा.जैन युवा फैडरेशन पश्चिमी (उ.प्र.) एवं अ.भा.जैन युवा फैडरेशन व महिला फैडरेशन, खतौली द्वारा

धर्मरत्न
9 अप्रैल 1994
भारतीय जैनमिलन, तिजारा द्वारा

धर्मरत्न
28 मार्च 1999
विद्यासागर यूथ, रतलाम मध्यप्रदेश द्वारा

तत्त्ववेत्ता
8 अप्रैल 2001
डॉ. भारिल्ल के अभिनन्दन समारोह में अ. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद द्वारा

25000/- रु. की नगद राशि से सम्मान
25 फरवरी 1975
उत्तरप्रदेशीय मुमुक्षु मण्डल, आगरा द्वारा सर्वोदयतीर्थ पुस्तक हेतु

परमागम विशारद
8 अप्रैल 2001
अ.भा.दि. जैन विद्वत परिषद् आत्मार्थी ट्रस्ट एवं दि. जैन राज्य समिति, दिल्ली द्वारा

अध्यात्म दिवाकर
1 सितम्बर 2001
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, भोपाल द्वारा

तीर्थरत्न
15 मार्च 2010
समस्त मुमुक्षु समाज केसली द्वारा

अध्यात्म शिरोमणि
29 अप्रैल 2001
अध्यात्मसाधना केन्द्र कुन्दकुन्द आत्मसाधना केन्द्र कुन्दकुन्द कहान आत्मार्थी ट्रस्ट, दिल्ली द्वारा

इसके अतिरिक्त आपको जिनधर्म गौरव, जैन मिलन रत्न, महामहोपाध्याय, तत्त्ववेत्ता आदि 200 से भी अधिक सम्मान एवं उपाधियाँ को देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं एवं समाजों द्वारा प्रदान की गई।

अधूरी उल्टी आत्मकथा

मेरी विदेश यात्राएँ

1979
नैरोबी पंचकल्याण
22 दिसम्बर से
12 जनवरी तक
प्रथम यात्रा

1980
28 दिसम्बर
से 10 जनवरी
तक

1984
26 जून से
25 जुलाई
तक

1985
8 जून से
14 अगस्त
तक

1986
17 जून से
11 अगस्त
तक

1987
21 मई से
22 जुलाई
तक

1988
5 जून से
25 जुलाई
तक

1989
2 जून से
25 जुलाई
तक

1990
1 जून से
19 जुलाई
तक

1991
13 जून से
31 जुलाई
तक

1992
4 जून से
23 जुलाई
तक

1993
3 जून से
3 अगस्त
तक

1994
3 जून से
24 जुलाई
तक

1995
2 जून से
26 जुलाई
तक

अधूरी उल्टी आत्मकथा

मेरी विदेश यात्राएँ

1996
6 जून से
30 जुलाई
तक

1997
20 मई से
27 जुलाई
तक

1998
29 मई से
2 अगस्त
तक

1999
9 जून से
11 अगस्त
तक

2000
6 मई से
24 जुलाई
तक

2001
23 मई से
18 जुलाई
तक

2002
30 मई से
28 जुलाई
तक

2003
20 जून से
21 जुलाई
तक

2004
28 मई से
1 अगस्त
तक

2005
1 जून से
24 जुलाई
तक

2006
26 मई से
17 जुलाई
तक

2007
30 मई से
23 जुलाई
तक

2008
6 जून से
30 जुलाई
तक

अधूरी उल्टी आत्मकथा

मेरी विदेश यात्राएँ

2009
29 मई से
22 जुलाई
तक

2010
4 जून से
18 जुलाई
तक

2011
3 जून से
24 जुलाई
तक

2012
8 जून से
20 जुलाई
तक

2013
7 जून से
23 जुलाई
तक

2014
5 जून से
14 जुलाई
तक

2015
12 जून से
15 जुलाई
तक

2016
30 मार्च से
6 अप्रैल
तक

2016
15 जून से
22 जून
तक

2017
9 जून से
9 जुलाई
तक

2018
8 जून से
9 जुलाई
तक

2019
7 जून से
7 जुलाई
तक

साहित्य
पाठशाला
प्रशिक्षण शिविर
आत्मधर्म
वीतराग-विज्ञान
तत्त्ववेत्ता
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
महाविद्यालय
तत्त्वज्ञान
रीति-नीति
संकल्प
विदेश यात्रा